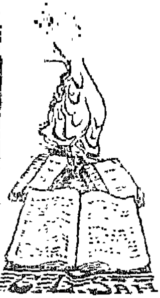


दीवाने

दीवाने

[उपन्यास]

लेखक
बंगभाषा के ओजस्वी, यशस्वी औपन्यासिक
श्री मनोज बसु

अनुवादक
रूपनारायण पांडेय
(भू० पू० माधुरी सम्पादक)

लखनऊ
अशोक प्रकाशन
१९५५

प्रथम हिन्दी संस्करण १९५५

साहित्य मन्दिर प्रेस लखनऊ ने मुद्रण किया

दीवाने

शंकर दादा

शंकर दादा, तुम लोगों को मैं भूला नहीं। राह-घाट में, ट्राम में, बस में, निश्चित आदमियों को देखता हूं, खाते-पीते हैं, आफ़िस जाते हैं, रोग में भोगकर सीधे मर जाते हैं। खासे हैं, मजे में हैं। कोई चिन्ता नहीं, कोई झगड़ा नहीं, कोई खटका नहीं। मल्लिका का मुंह देखकर, उसके लिए मैंने भी कितनी ही बार यह तय किया है कि मैं भी इन्हीं लोगों में से एक होकर जीवन बिताऊंगा। किन्तु मैं ऐसा कर कहां सका? सुनसान सन्नाटे की रात में तुम लोग आकर हाज़िर होते हो, फुसफुसा कर बातें करते हो।—मेरी मुंहबोली पत्नी निरुपमा उर्फ़ निरू हंसती हुई आकर खड़ी होती है और अभिमान से विक्षुब्ध आनन्द आता है। स्तब्ध गुमशुम सोमनाथ की छायामूर्त्ति को देखकर चटपट दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूं। जगत् दत्त, उमा रानी, माया, सरोज पाकड़ाशी—जाने-अजाने कितने ही साथी जैसे दूसरे युग से नींद से जागकर उठकर आते हैं।

तुम लोगों को कहीं भूला जा सकता है?

मेरे बाप थे नीलकान्त राम! ऐसा प्रतापी और रोबदाब वाला

प्रिंसिपल उन दिनों किसी मफ़स्सल के कालिज में न था। बंगाल में बंगभंग का आन्दोलन शुरू हुआ। उस समय मैं एक कमसिन बालक ही था। याद आता है, उस दिन राखी-बंधन का दिन था—किसी घर में चुल्हा नहीं जला; सबने उपवास किया था। हर एक रास्ते में लड़के-बूढ़े जवान स्वदेशी गाने गा रहे थे—एक दूसरे के हाथ में हल्दी से रंगी पीली राखी बांध रहा था। हम लोग कालिज से मिले हुए क्वार्टर में रहते हैं। आज कुछ गड़बड़ी होगी, यह सोचकर मां ने मुझे स्कूल नहीं जाने दिया। इसीसे मैं बहुत खुश था। एकाएक सैकड़ों कंठों से बन्दे-मातरम् की आवाज़ गूंज उठी। दौड़कर सदर दरवाज़े पर गया।

बहुत बड़ी लड़कों की भीड़ जा रही थी। एकाएक रुकावट पड़ी। पिताजी ने आफ़िस घर के बरामदे में आकर गंभीर कंठ से पुकारा—शंकर, सुनो इधर आओ—

इन साढ़े चार सौ लड़कों में किसी की ताक़त न थी जो इस प्रकार को अनसुनी कर सकता या अवहेला करता। वहीं पहले मैंने शंकर दादा को देखा। बरामदे में चढ़कर पिताजी को प्रणाम करके बिना किसी संकोच के वह उनके सामने खड़े हो गये। मेरा कलेजा धकधक कर रहा था—इस लड़के के भाग्य में क्या बदा है! उस दिन की उनकी वह छवि आज भी स्पष्ट मेरे मन में है।

छात्र की ऐसी बलिष्ठ भावभंगी से मेरे पिताजी ही नहीं, कालिज से सम्पर्क रखनेवाला कोई भी अधिकारी परिचित न था। पिताजी ने भौंह सिकोड़कर कहा—मामला क्या है शंकर ?

शंकर ने निर्भीक भाव से कहा—आपके कालिज को बंद कराने और लड़कों को अपने साथ ले जाने के लिए आया हूं। सर्कुलर निकला है कि वह हमें वन्दे मातरम् न कहने देंगे। यह अपमान सहा नहीं जाता।

सब आश्चर्य से अवाक् थे। इस भयलेशहीन लड़के के सिर पर वज्र-पात होने ही वाला है——चाहे दो-एक घंटे के भीतर हो और चाहे दो-एक दिन बाद हो——किसी को इस बारे में लेशमात्र संशय नहीं रहा। और एक भी शब्द न कहकर पिताजी अपने कमरे में चले गये। इसके बाद शोरगुल और गड़बड़ एकदम बंद; बहुत से लड़के चुपचाप अपने क्लासों में घुस गये। बाक़ी रह गये शायद पचास के लगभग, उन्हें लेकर शंकर दादा अविचलित चाल से बाहर चले गये। कालिज की सीमा के बाहर सभा बहुत रात गये तक होती रही। बीच-बीच में वन्दे मातरम् की आवाज़ से यह मालूम होता था।

दूसरे दिन जो हुआ, उसे सोचा भी न था। देखा, हमारे बैठकखाने में शंकर दादा बैठे हैं और पांच-सात लड़के बाहर खड़े झांक-झूंक कर रहे हैं। पिताजी के साथ बहुत देर तक शंकर दादा की बातें होती रहीं। क्या बातें हुईं, मुझे याद नहीं; उस समय याद रखने लायक अवस्था भी मेरी नहीं थी। अनेक बहानों से मैंने कमरे के भीतर आकर अकुंठित श्रद्धा से उस तेजस्वी किशोर के प्रदीप्त मुख को बारंबार देखा था। पिताजी की आखिरी बात मुझे याद है——"बड़ी कठिन राह है——तुम लोग चल सकोगे?"

शंकर ने कहा——चल सकूंगा मास्टर साहब, आप आशीर्वाद कीजिए।

पिताजी ने कहा——एक आदमी भी अगर लौटकर आ सकोगे तो मुझे अपने बीच न पाओगे।

कालिज के सेक्रेटरी थे स्थानीय सरकारी वकील। उन्होंने खूब सहानुभूति दिखाकर पिताजी से कहा——आपने मना किया, उसे न मानकर चला गया। बड़े अन्याय की बात है——

पिताजी ने कहा—मना मैंने नहीं किया। सिर्फ़ यह पूछा था कि मामला क्या है।

सेक्रेटरी ने कहा—वह जो हो, बात एक ही है। दल के मुखियों के नाम तो लिख दीजिए—

पिताजी ने कहा—किसे छोड़ दूं, किसका नाम लिख दूं महाशय? दो-चार डरपोक लड़के शायद क्लास में गये थे, लेकिन मन ही मन वे भी इसी दल में हैं। और सच तो यह है कि आपको और मुझको ही क्या कम पीड़ा हुई है? बहुत ही बूढ़े हो जाने के कारण हम उन लोगों की तरह चिल्लाते नहीं हैं।

सेक्रेटरी ने मुंह लाल करके कहा—देखता हूं, कालिज में लड़के न रहने से आप ख़ुश हुए हैं।

पिताजी ने कहा—लड़कों के न होने के कारण मेरी इतने दिनों की गुलामी छूट गई, इसके लिए मुझे सचमुच ख़ुश ही होना चाहिए। अपनी इच्छा से इतने रुपयों का मोह छोड़ना कठिन ही होता।

बस, पिताजी ने नौकरी छोड़ दी—क़सम तोड़कर लड़के लौट आते हैं कि नहीं, यह देखने की अपेक्षा नहीं की। लड़कों की हड़ताल अवश्य ही अधिक दिनों तक नहीं टिकी, प्रायः सभी कालिज लौट न आये थे—शंकर दादा तक। किन्तु उन लोगों की यात्रा और एक तरफ़ जो शुरू हो गई, जीवन के अन्त तक उनमें से किसी को भी पीछे घूमकर देखने की फ़ुरसत नहीं हुई।

जिले के कलेक्टर तक ने हाथ पकड़कर पिताजी से इस्तीफ़ा वापस लेने का अनुरोध किया, पर उन्होंने एक न सुनी। घर के भीतर भी भारी आंधी उठी। पिता ने सबको हंसते-हंसते शान्त किया। कहते थे—तुम्हीं बताओ, मेरे लड़के जीवन देते हैं और मैं महीने-महीने नगद

तनख्वाह गिनाकर कैसे राजभोग भोगूं——

सब जगह पिताजी की ऐसे ही बड़ी ख़ातिर होती थी, उस पर नौकरी छोड़ देने के कारण उन्हें लोगों ने एक देवता मान लिया। जहां स्वदेशी की सभा होती, वहीं उन्हें जाना पड़ता। बिल्कुल ही असमर्थ होने पर दो-एक जगह के लिए अगर वह 'ना' कर देते तो लोग पैर पकड़कर, एक तरह से ज़बरदस्ती, पालकी पर बिठाकर उन्हें अपने कंधों पर ले जाते। वास्तव में लड़के एक तरह से पागल हो रहे थे। शंकर दादा आदि को भयानक दण्ड देने के लिए अधिकारी सोच रहे थे; किन्तु यह हालत देखकर सब रोक दिया गया। सेक्रेटरी ने एक दिन शंकर दादा को बुला भेजा। उनके न जाने पर अन्त को वह——वकील साहब——बहुत ही छिपाकर खुद होस्टल में पहुंचे। यह बात शंकर दादा के ही मुंह से मैंने सुनी है, इसलिए झूठ नहीं हो सकती। हितैषी अभिभावक की तरह स्नेह के स्वर में उन्होंने कहा था——तुम लोग राजनीति में पड़ना चाहते हो, यह कुछ अन्याय नहीं है; लेकिन उसका एक समय भी तो होता है! अभी शिक्षा का——पढ़ने-लिखने का तुम्हारा समय है; लिख पढ़कर मनुष्य बनो। अवस्था बढ़ने पर राजनीति में पड़ना।

शंकर दादा ने जवाब दिया——आपकी राजनीति और हमारी राजनीति एकदम भिन्न है सर। आपकी राजनीति के माने हैं रुपए-पैसे, मोटर गाड़ी, सरकारी खिताब, साहबसूबा के निकट प्रतिष्ठा प्रतिपत्ति, कौन्सिल की मेम्बरी। और हमारी राजनीति है अन्धकार जेल, बेंत खाना, अपने लोगों से चिरकाल के लिए बिछड़ना, काला पानी, शायद फांसी का फंदा भी। आपकी उम्र तक जीते रहना हमारे भाग्य में नहीं लिखा है। अगर जियेंगे तो शायद आपकी ही राजनीति को अपनावेंगे।

चक्कर में पड़कर ऐसी बात भी वकील साहब को हज़म कर लेनी

पड़ी, चूं नहीं की। कालिज के रजिस्टर में बदस्तूर शंकर दादा का नाम बना रहा। किन्तु उन्हें पढ़ने-लिखने का समय न था; केवल अपने काम की गरज से कालिज से सम्बन्ध रखे हुए थे। नये साल में नये नये लड़के आते हैं। देखते-देखते उनके बीच शंकर दादा के बारे में संभव-असंभव अनेक क़िस्से प्रचलित हो जाते हैं—शंकर दादा के पास जाने के लिए, उनकी बातें सुनने के लिए, उनके हाथ की लिखी दो-चार लाइनों की चिट्ठी पाने के लिए सभी उत्सुक और व्यग्र होते हैं। एक नये प्रिंसिपल कालिज में आये। वह शंकर दादा को छेड़ने का साहस नहीं करते थे, लेकिन लड़कों पर सर्वदा कड़ा शासन रखते थे कि वे लिखने-पढ़ने में अधिक मन लगावें, बैठकबाजी न करते फिरें इत्यादि इत्यादि। अर्थात् प्रकारान्तर से शंकर दादा से मिलने जुलने को मना कर देना ही, और क्या!

तब शंकर दादा ने होस्टल छोड़ दिया। पास ही के एक गांव में एक ब्राह्मण के घर में रहने लगे, जिसमें लड़कों को कोई असुविधा न हो। मय माल (तमंचा) पकड़े गये। जेल हुई। इसी के साथ कालिज से नाम भी कट गया।

सुना है, उस पहली बार पकड़े जाने पर उन्होंने एक कीर्त्ति की थी। परवर्त्ती काल में यह प्रसंग छिड़ने पर शंकर दादा हंसकर कहते थे—अरे जाओ भी! बात यह हुई कि उनको हवालात में रखा गया था। रात भर वह दीवाल में माथा पटकते रहे। सबेरे देखा गया, खून से लथपथ हैं। मामला क्या है? उन्होंने सुना था कि अधिकारी लोग कबुलाने के लिए तरह-तरह की मीठी और कड़वी व्यवस्था करते हैं, जिनसे दल के अनेक लड़कों ने दल की बहुत सी बातें कबूल दी हैं। वह मारने-पीटने और सताने का क्या क्रम है, इसका उन्हें कोई अंदाज़ न था। इसी से

कहीं वह भी इस फंदे में न पड़ जायं, उन्होंने मरने का इरादा किया था।

कबूलने की बात आने पर हम लोगों को सरोज पाकड़ाशी की याद आती है। गोली से घायल दशा में वह पकड़ लिया गया था। प्रश्न किया गया—तुम क्या जानते हो? दिन पर दिन ख़ुफ़िया पुलिस के जवान दलबद्ध होकर आ-आकर उसे दिक़ करने लगे—बोलो, तुम क्या जानते हो?

अन्त में एक दिन सरोज ने कहा—सुनियेगा या देखियेगा?

वे लोग एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

"तो फिर देखिए" कहकर वह दोनों हाथ छाती के पास ले गया। सांस रोककर वे लोग प्रतीक्षा करने लगे—शायद कोई गुप्त चिट्ठी पत्री है क्या? वह क्या है? एक झिटके से सरोज ने बैंडेज फाड़ डाला। रक्त तीर के वेग से निकलने लगा। वह बेहोश हो गया। फिर उसे होश नहीं आया।

वह सरोज की मां—कैसी ख़ूंख़्वार औरत थी। सरोज की मां होने के कारण हमें उनके ऊपर श्रद्धा करनी चाहिए—वह हमारे सिर-आंखों पर—लेकिन वह बिल्कुल ही सुभीते के लोगों में न थीं। हम लोगों को तो वह दांत किटकिटा कर जैसे चबा डालना ही चाहती थीं। रोज़ उंगलियां फोड़कर 'बंदे मातरम्' वालों को कोसतीं और गालियां देतीं थीं। चिल्ला-चिल्लाकर एक दिन तो उन्होंने हिरणमय को गिरफ़्तार ही करा दिया था। और क्या! अथच, उन की दोनों सन्तान—लड़का और लड़की इसी पथ के पथिक हो गईं। इतना सतर्क रहकर भी मां जी घर की आग को संभाल न सकीं।

शान्ति दीदी की याद आती है। उनके स्वामी पुलिस-विभाग के नामज़ादा अफ़सर थे। दूसरी ओर बहुत ही सीधे और भले थे। उन्हीं

के विश्वास कर लेने के स्वभाव के कारण हमारे दल का हिरण्मय भागने की सुविधा पा गया था। हिरण्मय को पकड़ने के लिए वह भले आदमी चारों ओर दौड़-धूप करते घूम रहे थे। उस समय मैंने अपने कानों से शान्ति दीदी को नारायणके मंदिर में जाकर भगवान् से प्रार्थना करते सुना है कि भगवान्, लड़का पकड़ा न जा सके। पकड़ लेंगे तो उसे वे काले पानी भेज देंगे।

मैंने पूछा—तो फिर तुम्हारे स्वामीकी नौकरी चली जायगी—तब?

शान्ति दीदीने कहा—एक बेला आधे पेट खाकर रहूँगी भाई।

और शंकर दादाकी मां को देखा है। वह हमारे सारे दलकी मां थीं। लड़का आँखोंके आगे तिल तिल करके मरा, मगर मां के मुंह की वह स्निग्ध हँसी मैंने किसी दिन फीकी होते नहीं देखी। बल्कि सुरमा ही आकर किसी दिन नाराज होती थी—कहती थी—आपका कलेजा पत्थर का है—

हममें से कई आदमी उसदिन वहाँ बैठे थे, सुरमा ने आकर कहा था—नई पृथ्वी (दुनिया) का स्वप्न देखते हैं शंकर दादा—वहां सभी सुखी—सभी भोगी हैं। किन्तु आप क्या सुखभोग कर गये, बतलाइए तो?

शंकर दादा चुप्पे आदमी थे—अपने सुख-दुखका, भीतर का हाव-भाव कम ही प्रकट करते थे। किन्तु मृत्यु के आमने-सामने खड़े होकर उस दिन न जाने क्या हुआ, जैसे उनके मन का द्वार खुल गया। गंभीर कंठ से उन्होंनेकहा—इसके लिए मुझे भी कष्ट होता है बहन। बहुतों के बहुत दिनों के जमा हुए अन्याय का प्रायश्चित्त हम लोगों को करना पड़ा। यह संसार मेरे लिए नहीं है—शान्ति कहो, सुख कहो, कुछ भी मैंने नहीं लिया—रात रात भटकता रहा। इस भटकने के बदले में मैं चाहता हूँ कि तुम लोगों के लाखों घर आनन्द से भर उठें। नहीं तो मेरी यह

आत्मवंचना वृथा ही होगी।

और एक वृत्तान्त सुनो। उस समय मैं जेल में था। भोर के समय मीठे रसीले कंठ से किसीने कहा—जाता हूँ दादा, आप लोग दुआ कीजिए। और एक आदमी ने कहा—भूलिएगा नहीं। हम लोग फिर अपने स्वाधीन देश में जन्म लेंगे।

ये दोनों मित्र थे। इससे पहले आँखों ही आँखों में उनके साथ बातचीत हुई थी। दोनों जने दौड़ पड़े—कौन पहले फाँसी का फंदा पहनेगा, इस की होड़ सी करके।

इन लोगों के दिन बीत गये। आज स्वाधीनता की एक अपूर्व परिभाषा पाई है। राह भी एक दम नई है। तो क्या मैं इनको भूल सकता हूँ—चित्र बनकर ये मेरे मन में अंकित हो गये हैं। अब बूढ़ा हुआ हूँ, तुम दादा कहकर पुकारते हो। उत्सुक मुख से कहते हो—अपने लोगों की वे सब बातें सुनाओ। छुटपुट इधर-उधर की बातें सुनाता हूँ—सुनकर तुम तृप्त नहीं होते। शुरू से अन्त तक सिलसिलेवार सुनना चाहते हो। किन्तु कहूँ किस तरह भाई? किशोरावस्था में एक स्वप्न लेकर राह में निकला था; जीवन भर उसके पूरे होने की प्रतीक्षा में रह गया—वह समय आ रहा है—आता है—अब आता है। वह दिन जब आवेगा, तब स्मृतिशक्ति अगर एकदम जवाब न दे जायगी तो बदस्तूर तुम लोगों की महफ़िल जोड़कर सब बातें सुनाऊँगा। सबर करो उन थोड़ेसे दिनों तक।

*　*　*　*

रानी

रानी की अपमृत्यु हो गई है, यह हम जानते थे। हुआ भी था यही। कहता हूं--सुनो।

मैं पुरी गया था।

मेरे जाने का ठीक न था--मंझले मामा ही जाने को थे। वह रेलवे में काम करते हैं, पास मिला था। एकाएक बाई की पीड़ा बढ़ जाने के कारण वह खाट पर पड़ गये। तब मुझे भरोसा देकर उन्होंने कहा--तुम जाओ मुन्नू, पास क्यों बेकार जाय। रेल का कोई पूछे तो सिर्फ़ मेरा नाम कह देना। कौन किसे पहचानता है! और हमारे राय बहादुर वहां रहते हैं, जाकर उनसे मिलना, किसी तरह की असुविधा न होगी।

राय बहादुर का नाम था अनन्तप्रसाद चक्रवर्ती। नहीं जानता, तुम लोगों को याद आवेगा या नहीं, उनके वृद्धावस्था में ब्याह करने की बात को लेकर उस समय अखबारों ने बहुत टीका-टिप्पणी की थी। लड़कों के साथ इसके लिए उनका झगड़ा भी खूब हुआ था और राय बहादुर को सन्देह था कि इस लिखा-पढ़ी का सम्बन्ध उनके लड़कों से था--यह उन्हीं की साज़िश थी। अब अवश्य झगड़ा मिट गया है--मामला ठंडा हो गया है। एक तरह से तभी से राय बहादुर अपनी दूसरी पत्नी और पहली पत्नी के लड़कों को लेकर पुरी में रहते हैं। उनका एक लड़का यतीश्वर मंझले मामा का कालिज का सहपाठी और मित्र है--अभिन्न-हृदय ही कहना चाहिए। अब वह एक दफ़्तर में काम करते हैं। उनके कलकत्ते के घर में अब मंझले मामा का अड्डा है।

पुरी में सवेरे के समय पहुंचा। एक होटल में जाकर ठहरा। तीसरे पहर राय बहादुर की तलाश में निकला। वह बहुत दिनों से यहां रहते

हैं, इसलिए अनेक लोग उन्हें जानते-पहचानते हैं, यह देख पड़ा। चक्रतीर्थ की तरफ़ थोड़ा सा जाकर बाएं हाथ एक रास्ता है, जिसमें क़तार की क़तार झाऊ के पेड़ हैं। उन्हीं के बीच एक बहुत बड़े कम्पाउंड-वाला दुमंजिला मकान है।

राय बहादुर बाहर की बैठक में थे, कहीं जाने का जोड़-तोड़ हो रहा था। इनवैलिड चेयर आई है, दो नौकर खड़े हैं। घरमें लड़के-बच्चों का एक झुंड है। एक महिला भी थी--निश्चय ही दुबारा ब्याही गई पत्नी होगी। मुझे घुसते देखकर वह भीतर चली गई। चली गई, तब भी दामी सेंट की गंध घर को सुवासित कर रही थी। बुढ़ापे की जोरू है कि नहीं ! राय बहादुर ने खीझ की नजर से मेरी ओर देखा। उनका मुख बेढंगा, लम्बा और अस्थिचर्मसार था। मैं समझ गया, बिना खबर दिये इस तरह मेरा घुस पड़ना उचित नहीं हुआ।

राय बहादुर ने पूछा--- तुम्हें क्या चाहिए ?

जवाब न देकर मैंने यतीश्वर बाबू के नाम लिखी गई चिट्ठी उनके हाथ में दे दी।

चिट्ठी, खाली चिट्ठी···बिड़-बिड़ करते बकते-बकते पाकेट से ढूंढ कर उन्होंने चश्मा निकाला। चिट्ठी पर एक नजर डालकर अवहेलना के साथ उसे फेंक दिया। रूखे गले से पूछा---तो मुझे क्या करना होगा ?

'कुछ नहीं' कहकर फ़ौरन् मैं घर के बाहर निकल आया। बड़ा क्रोध आया। इस ढंग के आदमी सभी ऐसे होते हैं ! मैं क्या नौकरी मांगने गया था या उनके घर का अन्न खाने के मतलब से आया हूं ! उसी जगह भी कोई भला आदमी जाता है ! मंझले मामा की भी अच्छी अवस्था है।

अब फिर उधर मुंह न करूंगा। होटल में ही बैठे-बैठे ताश खेल कर दिन बिताता हूं, शाम के समय समुद्र के किनारे टहलने जाता हूं। स्वर्गद्वार के उधर जिस जगह को गोरबाटसाही कहते हैं, वहां बहुत कम लोग जाते हैं। मैं एक दिन उधर गया था। देखा, बालू के ऊपर कुर्सी डाले राय बहादुर बैठे हैं। मैं हन-हन करके आगे बढ़ गया, उधर देखा भी नहीं। लौटते समय देखा, उनकी स्त्री भी आई हैं—घर लौटने की तैयारी हो रही है।

इसके बाद बीच-बीच में उधर जाता रहा। इसी एक जगह में दोनों पति-पत्नी रोज आकर बैठते हैं। उस समय के एक अखबार ने लिखा था—एक बहुत ही खूबसूरत किशोरी ने वृद्ध की लालसा की आग में अपनी आहुति दे दी। इसी तरह की न जानें कितनी ही बातें! इसी से उस महिला को देखने की मनमें खूब उत्सुकता थी—तिर्छी नजरों से ताक-ताक कर उन्हें देखने की चेष्टा करता था। किन्तु सन्ध्याके बाद झुटपुटा हो जाने पर वह आती हैं, देखने की सुविधा नहीं होती। अन्त को एक दिन देख ही लिया। गाड़ी सड़क पर छोड़ कर रेती के ऊपर वह पैदल आ रही थीं। एक दम आमने-सामने भेंट हो गई। मैं चौंक उठा। यह मुख तो मेरा पहचाना—खूब पहचाना जान पड़ता है। अथच, याद नहीं आ रहा है कि कहां देखा है। जैसे कोई पूर्वजन्म की परिचित हों, इस जन्म की नहीं। उन महिला की भी मेरे ऊपर नजर पड़ी। चटपट सिर पर आंचल खींच कर मुंह फेरकर वह चली गईं।

रात को लेटे-लेटे ठंडे दिमाग़ से सोचने लगा। इसके बाद याद आया, रानी के मुख से यह मुख एक दम मिलता है। किन्तु यह रानी कैसे हो सकती है? रानी की तो अपमृत्यु हो गई है, पुलीस की रिपोर्ट में भी यही लिखा है। उसके सम्बन्ध में तो सभी कौतूहल की समाप्ति गई है।

प्रकाश बुझा कर सोया हूं, घरमें अन्धकार है। एकाएक अन्धकार का पर्दा उठ गया—समय लगभग तीस बरस पीछे का सामने आ गया। वही, जब हम होस्टल में रहते थे। होस्टल माने एक झोपड़ी, मिट्टी का फ़र्श। जाड़ों में जमीन पर सोते थे, वर्षा में बांस का मचान तैयार कर लिया जाता था—ठंडक के लिए नहीं, पीछे के जंगल से सांप आ जाते थे, उन्हीं की आशंका से। शंकर दादा फ़ोर्थ ईयर में पढ़ते थे। उनकी पढ़ाई कैसी होती थी, यह तो आप पहले ही सुन चुके हैं। फ़ोर्थ ईयरके रजिस्टर में उनका नाम अवश्य लिखा था—कई साल तक लिखा रहा। उनके घर से रुपये होस्टल के पते पर आते थे, किन्तु उस समय उन्होंने होस्टल छोड़ दिया था। होस्टल से लगभग एक कोस दूर द्वारिका चटर्जी नाम के एक ब्राह्मण के यहां लड़कों को पढ़ाकर खाने-पीने को पा जाते थे। घर के लोग जानते थे कि होस्टल में हैं। वे उसी के माफ़िक खर्चे के लिए रूपये भेजते थे। उन रुपयों से शंकर दादा··· ना, वह बात नहीं कहूंगा। तब हमें आश्चर्य मालूम पड़ता था, दुःख भी होता था। शंकर दादा कष्ट उठाते थे। द्वारिका चटर्जी की माली हालत उतनी अच्छी नहीं थी। खाने के बाद शंकर दादा को अपने हाथ से जूठन उठानी पड़ती थी, जूठे बर्तन मांजने पड़ते थे। और वह भोजन भी कैसा था। वसन्त ऋतु भर सतिजन के पत्ते उबाल कर खाये जाते थे मोटे भात के साथ। उसके बाद एक दम क्वार तक कटहल के कोए और नारी का साग चलता था।

कालिज के बाद हम लोग प्रायः ही शंकर दादा के पास जाते थे। एतवार के दिन तो निश्चय ही। रानी, जिसका पूरा नाम उमा रानी था, उसके साथ परिचय वहीं हुआ था। वह द्वारिका के घर की ही लड़की थी। अवस्था १८-१९ वर्ष की हो गई थी, तब भी ब्याह नहीं हुआ था। जिस

की लड़की भी हम ले सकें, ऐसा बराबरी के सम्बन्ध का लड़का खोज कर लड़की का व्याह करना बंगाल में कठिन काम होता है। हां, उतना रुपया पैसा पास हो तो दूसरी बात है।

हर एतबार को वहां तरह-तरह की पुस्तकें पढ़ी जाती थीं—गीता, बंकिम चन्द्र का आनन्दमठ, विवेकानन्द और सखारामगणेश देउस्कर की देश की बात आदि। शंकर दादा का हुक्म था कि प्रत्येक दिन सभी को गीता पढ़नी होगी। जिस को जहां पर सन्देह होता था, वह उस जगह निशान लगा कर रख देता था। एतवार के दिन शंकर दादा उसका अर्थ और भाव समझा देते थे, एक दम अपने ढंग से, जो छपे हुए अर्थ या व्याख्या से बिल्कुल नहीं मिलता था। इस सब पढ़ने-सुनने के बीच हम लोग किसी-किसी दिन देखते थे—शंकर दादा ने भी निश्चय देखा होगा—रानी कमरे में बैठकर तद्गत भाव से सुन रही है, उसे जैसे होश ही नहीं—और किसी ओर ध्यान ही नहीं है। वह चित्र आज भी मैं आंखें मूंद कर अच्छी तरह अपने मन में देख सकता हूं। याद रखो, वह एक गांव था और रानी के मा-बाप भी कुछ बड़े आदमी नहीं थे, इसलिए औरतों के पर्दे का कोई कड़ा नियम न था, सहज भाव से ही वह हम लोगों से मिलती जुलती, बात करती थी। घर के सामने ही भैरव नाम की नदी थी। बीच-बीच में हम लोग नदी के घाट पर जाकर बैठते थे। तब मैंने लक्ष्य किया है कि रानी पानी भरने, कपड़े धोने आदि के तरह-तरह के बहाने करके बार-बार वहां आया-जाया करती थी।

वर्षा के समय एक दिन सवेरे से खूब पानी बरस रहा था। मुझे कुछ ऐसा हो गया था कि कालिज जिस दिन बन्द होता था, दोपहर को होस्टल में बैठे रहना अच्छा न लगता था। उस दिन भी छुट्टी थी। भीगते-भीगते उसी शंकर दादा के छप्पर में पहुंचा। वहां शंकर दादा की

अनन्त शय्या बारहो महीने तीसों दिन बिछी ही रहती थी। एक तो बदली का दिन, उस पर उस झोपड़ी में कोई खिड़की-विड़की भी तो नहीं थी, जिस से कुछ उजियाला होता—भीतर अंधेरा घुप था। भीतर घुसते ही पहले मैंने केवल शंकर दादा को देख पाया; खूब गम्भीर हो कर बिछौने पर बैठे थे। उसके बाद जो देखा, उस से अवाक् हो गया। ऐसा तो और किसी दिन नहीं हुआ। देखा, फ़र्श के ऊपर सिर झुकाये रानी बैठी है, उसकी दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बह रही है।

शंकर दादा ने कहा—यह लो मुन्नू तू आ गया। अच्छा हुआ। बैठ।

इतना कहकर अपने पास जगह दिखा दी। मेरे बैठते ही उन्होंने मेरा दाहना हाथ अपनी मुट्ठी में ले लिया। चुपचाप, कोई बात-चीत नहीं। मैं समझ गया, वह कुछ विचलित हो रहे हैं।

ऐसी दशा में मैं क्या करूं, किस से क्या कहूं, कुछ समझ में न आया।

जरा देर बाद शंकर दादा ने कहा—अच्छा, मुन्नू ही बतलावे, तुम्हारे द्वारा हम लोगों का क्या काम होगा? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता तुम बेकार ही दुखी होती हो रानी।

उमा रानी ने रुलाई के स्वर में कहा—यह क्यों नहीं कहते कि आप मुझ पर विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। सोचते हैं—मुझे दल में लेने से देश का काम भरभंड हो जायगा।

शंकर दादा ने मेरी ओर ताक कर कहा—यह तो अच्छी पागल लड़की है। जरा इसे समझा तो दे मुन्नू।

फिर आप ही समझाने लगे—देश के माने क्या यह थोड़ी सी जमीन और दो-चार पेड़-पौधे हैं? तुम सब मिलकर ही तो देश हो। स्वाधीन देश में तुम स्वच्छंद रहोगे, इसी से तो हम कष्ट उठाते हैं—परिश्रम करते है, कोशिश करते हैं। बिना किसी लाभ के कोई कभी कष्ट उठाता

है---कहो, तुम्हीं कहो। सुनो, इसके बदले तो जब बाल-बच्चे हों तो उनमें से एक-दो हमें दे देना। देश का उद्धार कुछ एक दिन में तो हुआ नहीं जाता।

रानी ने तर्क किया---और लोग? तुम लोग जान पड़ता है, देश के आदमी नहीं हो? तुम लोग जो खाना-पीना भूलकर, जीवन का मोह छोड़कर इस तरह रहते हो---मारे-मारे फिरते हो---

शंकर दादा ने हो-हो करके हंसकर बात को उड़ा दिया। बोले---देखो जरा। इसीलिए तो तुम लोगों को साथ लेना नहीं चाहता। तुम लोग आओगी तो खूब धूम-धाम से खिलाने-पिलाने बैठ जाओगी---जीवन के बारे में जिसमें हमें माया-मोह हो, इसका सदुपदेश देने लगोगी। यही सब सोच-समझकर तो स्वामी जी कामिनी-कांचन के सम्पर्क के बारे में सावधान कर गये हैं।

दीवाल में स्वामी विवेकानन्द का चित्र था---गेरुआ चोग़ा, गेरुआ पगड़ी, वीर मूर्ति। शंकर दादा हंसते हुए मुख से उनकी ओर ताकते रहे, मुझ से बोले---और कोई नहीं देख पड़ता। बदली-वर्षा में क्या साहब लोगों के ऊपर क्रोध एकाएक ठंडा हो गया।

उमा रानी बीच में बोल उठी---मैं आपको एक बार प्रणाम करूंगी शंकर दादा। उसमें भी क्या आप को आपत्ति है कुछ?

शंकर दादा एक दम चौंक उठे। मेरी ओर देखकर सहज भाव से कहने लगे---समझे मुन्नू, देश स्वाधीन होने पर मुझे अगर तुम लोग राजा बना दोगे तो इन भावुक औरतों को सबसे पहले मैं काले पानी भेज दूंगा।---सुनो रानी, मैं तुम्हारे बाप से कह दूंगा---सचमुच कह दूंगा। ब्राह्मण की लड़की होकर कायस्थ को प्रणाम करती हो---जान पड़ता है, अब जाति-जन्म का मान नहीं रहेगा।

किन्तु मैं शंकर दादा के साथ हंस नहीं सका। यह मैं किस तरह आपको समझाऊं कि रानी किस भाव से कैसे शंकर दादा के पैरों पर सिर रखकर निस्पन्द निश्चल होकर पड़ी रही। बहुत देर बाद उठकर सिर झुकाये चुपचाप वह उठ गई।

इसी के दो दिन बाद मैंने देखा, रानी हंसी को संभाल नहीं पा रही है, जैसे चिड़िया की तरह हवा में उड़ रही है। मेरे आंगन में पैर रखते ही दौड़ती हुई आकर मेरे कान में कह गई—सुनते हो मुन्नू दादा, शंकर दादा राजी हो गये हैं—मुझे दल का काम करने देंगे।

शंकर दादा ने कहा—पहले परीक्षा दो, उसके बाद वह बात होगी।

रानी—बताइए, क्या करना होगा ?

रानी उसी समय प्रस्तुत थी।

शंकर दादा ने कहा—चटपट थोड़ी सी लैया भून लाओ। बरसाती दिन में खूब अच्छी लगेगी।

रानी दौड़ती हुई गई। लेकिन उसे कुछ सन्देह हो गया। घूमकर बोली—मुझे यहां से हटा देना चाहते हैं ?

थोड़ी देर में ही गरम-गरम लैया आ गई। नहीं जानता, इतनी जल्दी कैसे भून लाई। बड़े आनन्द से हम लोग थाली के चारों ओर बैठ कर खाने लगे।

शंकर दादा ने हंसकर कहा—दल में तुम्हारा काम यही जलपान के लिए लैया भूनने का रहा। जानती हो, यह बहुत बड़ा काम है।

किन्तु इससे भी बड़ा काम करने को उसने पाया था।

एक दिन रात को हम लोग सो रहे थे, इसी समय किसी के बार-बार धक्के मारने से हमने दरवाजा खोला। बाहर शंकर दादा साइकिल पर चढ़कर आये थे। उनकी आंखें अंगारे सी जल रही थी। मुझसे कहा—

सुनो, मैंने खबर पाई है--पुलीस ने घर घेर लिया है, बहुत तड़के तलाशी होगी। कुछ माल (तपंचा वग़ैरह) यहां से हटाना ज़रूरी है। नदी के उस पार जगत् दत्त के यहां पहुंचा देना होगा। तुम हम लोगों के खालिसपुर के घाट पर जाकर नाव ठीक करके नारियल के पेड़ के नीचे खड़े रहना। लगभग तीन घंटे के भीतर माल वहां पहुंच जाएगा---समझे? मैं घर जाता हूं।

अतएव नाव ठीक करके उनकी बताई जगह पर जाकर मैं खड़ा हो गया। अमावस के आस-पास की कोई तिथि थी। उस पर आकाश में बादल घिरे हुए थे। बड़ा भयानक अन्धकार था। भैरव में ज्वार आई थी, तेज़ बहाव और खिचाव था। देखते-देखते उस नारियल के पेड़ तक पानी आ पहुंचा। मैं ताक ही रहा था---आदमी के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। बहुत देर बाद देखा---रास्ते से नहीं, बाग़ की छाया-छाया के नीचे होकर मुंह पर घूंघट डाले एक छाया-मूर्ति तेज़ी के साथ आ रही है। लगभग मेरे पास ही वह आ गई थी, इसी समय किसी तरफ़ से एकाएक दो-तीन आदमी आकर उसके सामने राह रोक कर खड़े हो गये।

उन्होंने कहा---खड़े रहो, कहां जाते हो?

उन्होंने उसके मुंह पर टार्च से रोशनी डाली। मेरी जगह से जितना देख पड़ता था, मैंने देखा---अत्यन्त निर्भीक उमा रानी का वह मुख था।

उसने कहा---घाट पर जा रही हूं।

सवाल हुआ---क्यों?

झनकती हुई आवाज़ में उमा रानी ने जवाब दिया---ज़रा वहां बैठ कर दिमाग़ ठंडा करूंगी। बापू ने मुझे बहुत बका-झका है। रास्ता छोड़ो।

पुलीस ने कहा——तुमको थाने चलना होगा।

लेकिन रानी थाने नहीं गई। उनसे कतराकर पलक मारते नदी के जल में फांद पड़ी। एक तो तेज़ बहाव, उस पर घोर अन्धकार। मैं पेड़ के नीचे से चटपट खिसक गया।

खबर मिली कि सवेरे द्वारिका चटर्जी के घर की सचमुच तलाशी हुई थी, लेकिन कुछ निकला नहीं। कुछ मिलेगा नहीं, यह तो मैं जानता ही था। लगभग एक-डेढ़ बजे शंकर दादा होस्टल में आए। मुझ से बोले—कालिज जाएगा ? आज न जा मुन्नू, नाशा कर दे। चल, दोनों जने ज़रा घूम आवें।

ठीक दोपहर को घूमने का समय नहीं होता, और शंकर दादा का उस समय जैसा चिन्तित चेहरा था, उससे मैं समझ सकता था कि घूमने के लायक़ उनकी अवस्था भी नहीं है। थोड़ी दूर पर नाले पर एक काठ का पुल था। उसी के ऊपर शंकर दादा बैठ गए, मुझको भी बिठा लिया। बोले—कैसा साहस और बुद्धि इस लड़की की है। हमारे दल को तो उसी ने बचा लिया। घर से वह तीर की तरह निकल गई। उस समय वे लोग उसका मतलब समझ नहीं पाए। और स्त्री जाति को यह सुविधा भी है कि एकाएक कोई मर्द उसे पकड़ भी नहीं सकता।

मैंने पूछा——जान पड़ता है, रानी के बाप ने उसे खूब बका था।

शंकर दादा ने कहा——बक-झक तो हर दम ही चलती है। मुझको भी नोटिस दे रखी है कि भादों का महीना बीतने पर मुझे बिदा होना होगा। किन्तु बाप-मां वग़ैरह के बकने-झकने से आत्महत्या करने वाली इस प्रकृति की लड़कियां कहीं होती हैं ? तेरे हाथ में जब वह पोटली (शस्त्रों की) नहीं दे सकी तो रानी ने सोचा—और ठीक ही सोचा—कि वह खुद पानी में तैर कर जगत् दत्त के पास जाएगी। लेकिन वह

पहुंच नहीं सकी—बीच ही में डूब गई। मैं उस पार से ही आ रहा हूं। आह, हमारा—दल का—काम करने के लिए बेचारी पहले ही परलोक चली गई।

बहुत देर तक यही बात-चीत होती रही। कहते-कहते शंकर दादा ने हथेली से आंसू पोंछ डाले। पत्थर में भी पानी है, यह मैंने यहीं पहले-पहल देखा।

रानी की बात मैंने कितने ही दिन सोची है। देहात की स्वल्प शिक्षिता साधारण नारी वह—दल के काम को क्या समझती थी, कितना जानती थी। पर अंधेरी रात में निर्भय भाव से भयानक भैरव के प्रवाह में फांद पड़ी। पुलिस की टार्च की रोशनी में उसका अन्तिम घड़ी का चेहरा केवल मैंने ही देखा था। वह फिर भैरव की जलसमाधि से उठकर निकल आई है और कम-से-कम दो सौ भरी सोने के जड़ाऊ गहने सारे शरीर में पहने रायबहादुर के घर को जगमगा रही है, यह एकदम असम्भव व्यापार है। अथच अपनी दोनों आंखों पर ही अविश्वास कैसे करूं?

दूसरे दिन सड़क के ऊपर खड़ा था। दूर से देख रहा हूं, रायबहादुर नित्य-नियमानुसार समुद्रतट पर इजीचेयर के ऊपर विराजमान हैं। वह महिला आई—निस्सन्देह वह रानी ही है। मुझे देखकर ज़रा पहले ही वह गाड़ी से उतर पड़ी। पास आकर बोली—मुन्नू दादा, यहां कब आये? कहां ठहरे हो?

मैंने कहा—रानी, उमारानी, तुम जीवित हो?

रानी ने हंसकर कहा—बदस्तूर ज़िन्दा हूं। मेरे स्वामी कितने बड़े आदमी हैं—जैसे रुपये-पैसे में बड़े हैं वैसे ही उम्र में भी। बहुत बड़ा खिताब है, बहुत बड़ी जमींदारी है।

बातें करते-करते दोनों जने आगे बढ़ रहे थे। रानी ने कहा—तुमको एक नज़र देखकर ही मैंने पहचान लिया था; लेकिन तुमने मुझे नहीं पहचाना।

मैंने कहा—पहचानने पर भी जिसकी अपमृत्यु हुई जानता हूं, उसके साथ एकाएक बात करने का साहस कैसे हो सकता था?

रानी खिलखिलाकर हंस पड़ी। रानी की अवस्था अब काफ़ी हो गई है; पहले से मोटी भी हो गई है, तो भी पहले की तरह हंसी की वही मीठी आवाज़ है, वैसे ही हंसने में गाल में गढ़े पड़ जाते हैं। बोली—तो मैं भूत होकर तुम्हारे साथ चल रही हूं? हां, यह सच है। मैं क्या स्वप्न में भी जानती थी कि मेरे भाग्य में इतना सुख है?

इतना कहकर वह गम्भीर हो गई। और कुछ दूर आगे आकर उसने कहा—अब तुम हट जाओ मुन्नू दादा। मुझसे और किसी को बात करते देखकर बुड्ढा नाराज होगा। बूढ़ा होने के कारण मिज़ाज का ठीक नहीं है। तुम उसके आगे ऐसा भाव दिखाना जैसे हम दोनों में जान-पहचान नहीं है। कल सबेरे एक बार हमारी तरफ़ आना।

अत्यन्त करुण दृष्टि से मेरी ओर देखकर वह कहने लगी—अगर आ सको मुन्नू दादा, तो मैं मन्दिर में जाने का बहाना करके चली आऊंगी। कितनी ही बातें पेट में जमा हैं—छाती फाड़कर निकलना चाहती हैं।

सबेरे के समय एकान्त में बैठकर मेरी और उसकी बहुत-सी बातें हुईं। रानी के ब्याह का वृतान्त सुना। अनन्तप्रसाद अर्थात् रायबहादुर उन दिनों खुलना में डिपुटी थे। इसके पहले ही एक दुर्घटना हो गई थी। एकाएक कालरा हो जाने से उनकी पहली पत्नी का स्वर्गवास हो गया था। रह गया लड़के-बालों का एक झुंड। अनन्त बाबू सरकारी काम से छुट्टी न पाते थे—लड़के-बच्चों को कौन देखे, कौन उनकी सेवा और यत्न करे।

नौकर-चाकर यह काम ठीक कर नहीं पाते। अनन्त बाबू बड़ी मुश्किल में पड़ गये। सोचकर कोई उपाय न निकाल सके। आत्मीय लोग फिर ब्याह करने के लिए कहते थे। लेकिन ब्याह कोई मुंह का कौर तो है नहीं। कोई लड़की भी तो दे। वे श्रोत्रिय ब्राह्मण थे, जिन्हें बंगाल में हीन समझा जाता है। यों ही साधारणतः ब्याह के लिए लड़की पाना कठिन होता है। उस पर इतने लड़के-बाले होनेकी हालत में——इस बूढ़ी उम्र में! सिर के बाल सब सफ़ेद हो चुके थे। लोग कहते हैं——बंगाल में लड़कियां सस्ती हैं। तब भी तो कोई लड़की का बाप उन्हें नहीं पूछता।

किन्तु आदमी भगवान् पर विश्वास रखनेवाले हैं——सारे कामकाज के झंझट में भी त्रिकाल-सन्ध्या करना नहीं भूलते—अतः भगवान् ने ही ब्याह का जोगाड़ कर दिया। एक दिन गये थे 'बागेर हाट' की ओर एक मामले की जांच करने। नाव पर लौट रहे थे वहां से। रात का पिछला पहर था। एक मांझी डाँड़ उठाकर आ-हा-हा कर उठा।

मालिक ने पूछा——क्या है? क्या बात है?

मांझी ने कहा——एक आदमी डूबा जा रहा है।

अनन्त बाबू ने बजरे के बाहर निकलकर पानी पर टार्च की रोशनी डाली। देखा, कोई एक आदमी, पानी में हाथ-पैर मार रहा है, शायद नाव के पास आने का मतलब है, किन्तु आ नहीं पाता। उसके हाथ-पैर जैसे बेदम सुन्न हो गये हैं, तैरने में असमर्थ है। मांझी डाँड़ छोड़कर नदी में कूद पड़े। वह जगह उथली 'बालू की चर' जैसी थी, ज्यादा पानी नहीं था। उस आदमी को नाव पर लाया गया।

बड़ी मुश्किल से रानी को साधारण होश आया। अनन्त बाबू उसे अपने खुलना के डेरे में ले आये। तीसरे पहर पता जानकर द्वारिका चटर्जी को

ख़बर दी गई, उन्हें लाया गया।

अनन्त बाबू ने उनसे कहा—गोलमाल करने का क्या काम है, आप ही सोचिए। आपके गांव में ही तरह-तरह की बातें लड़की के बारे में उठाई जा रही हैं। लड़की का ब्याह करना कठिन होगा आपके लिए। उससे तो यही अच्छा है कि मुझे ब्याह दीजिए। किसीको कानोंकान खबर न होगी।

"आपको!" कहकर द्वारिका इधर-उधर करने लगे।

अनन्त ने कहा—यह न करोगे तो पुलिस पकड़कर जेल भिजवा देगी। उसकी कमर में रिवाल्वर बंधा था। जेल की बनिस्बत क्या मेरे घर में रहना खराब होगा? मामले को समझ देखो। मानो घर की लड़की है—अखबारों में नाम निकलेगा और इसी प्रसंग में सच-झूठ क्या-क्या कहा जायगा।

बाप निरुत्तर हो गये। रानी ने कहा—होने दो जेल। मुझे जेल ही अच्छी है। मुसकाकर अनन्त बाबू ने कहा—तो फिर अल्यूमीनियम के डिब्बे के ऊपर सीलमोहर करके जो काग़ज बड़े यत्न से तुम लिये जा रही थीं, वे भी पुलिस के हाथ पड़ जायंगे। उससे तुम अकेली नहीं, सारा दल फँस जायगा।

रानी क्रोध से आगबबूला हो उठी। बोली—वे काग़ज़ भी आपने पाये हैं? मैं जानती थी, धारा में वह डिब्बा गिर गया। दीजिए मुझे—दीजिए कहती हूं—

अनन्त पक्के खिलाड़ी ठहरे। लड़की का ग़ुस्सा देखकर उनकी हंसी और भी बढ़ गई। बोले—जल्दी क्या है! जैसे मेरे पास रहा वैसे तुम्हारे पास।—अच्छा, 'बहूभात' (बंगाल में ब्याह के बाद की एक रस्म) के दिन दूंगा—अवश्य अगर वैसा हो सका। नहीं तो थाने में दाखिल कर दूंगा।

ब्याह हो गया। अनन्त ने उस दिन भी वे काग़ज़ रानी को नहीं दिये। रानी बीच-बीच में मांगती थी और अनन्त "दूंगा, दूंगा" कहकर टाल देते थे। तब भी उनकी यह आशंका नहीं मिटी थी कि उन काग़ज़ों को हाथ में पाकर रानी क्या तब भी इसी तरह सेवा-यत्न करेगी ?

अब अनेक वर्ष हो गये हैं। मांगने से शायद दे दें, लेकिन रानी को ही इसका ख़याल नहीं होता। अब उन काग़ज़ों का क्या होगा ? देश के राष्ट्रीय-संग्राम में वह भूला हुआ एक अध्याय है, वे काग़ज़ शायद जीर्ण-शीर्ण हो गये होंगे, विकर्ण होकर लोहे के संदूक के एक कोने में पड़े होंगे। अथवा उनका अस्तित्व ही समाप्त हो गया होगा।

अपना किस्सा समाप्त करके रानी चुप होकर न जाने क्या सोचने लगी। इसके बाद पूछा—शंकर दादा कहां हैं ?

मैंने कहा—मुझे नहीं मालूम।

मैंने झूठ कहा। जानकर भी नहीं बताया। शंकर दादा की मृत्यु हो चुकी थी। कोई नहीं जानता कि ऐसी महान् आत्मा बराहनगर की एक तंग गंदी गली के भीतर आधे अन्धकार में किस तरह धीरे-धीरे मृत्यु के मुंह में जाकर लीन हो गई। किन्तु वह सब ख़बर सुनाने से लाभ क्या है ? शंकर दादा इस पृथ्वी पर नहीं हैं, रानी के मन में भी उस तरह से नहीं हैं जैसे पहले थे—यह मैं समझ पा रहा हूं।

इसके बाद मेरे अपने बारे में भी बहुत-सी बातें हुईं। रानी कहती है—यतीश्वर की चिट्ठी लेकर तुम आये थे, तब फिर क्या अटक है ! इसी ज़रिए से आज फिर हमारे घर आना ! ज़रूर आना। मैं उनके सामने ही तुमसे वार्तालाप करूंगी, तुमसे वहीं रात को भोजन करने के लिए कहूंगी। वह गरम-गरम लैया तब भून दिया करती थी। ओह, कितने दिनों से तुम लोगों में से किसी को नहीं देखा। आओगे न ?

गर्दन हिलाकर स्वीकार करके बिदा हुआ। तीसरे पहर आने को रानी ने कहा है, खाने का न्योता देगी। ऐसे बड़े आदमी की स्त्री है, लैया नहीं खिलायेगी, निश्चय ही खाने-पीने का आयोजन भारी होगा। होटल का खाना खाकर इन्हीं कई दिनों में अरुचि हो गई है। लेकिन राह में चलते-चलते मैंने तय किया कि उनके घर न जाऊंगा। बल्कि जिसमें फिर भेंट न हो, इसलिए पुरी को छोड़कर ही चल दूंगा। इन कई दिन तक मैं यह भूल ही गया था कि रानी की अपमृत्यु हो गई है—मेरे मन में यही बात बनी रहे कि रानी की अपमृत्यु हो गई है। घने अन्धकार में बिना किसी दुबिधा के वह विकराल भैरव नदी में फांद पड़ी, पुलीस की टार्च की रोशनी में मैंने जो छवि देखी थी, उसी जगह रानी की कहानी समाप्त हो रहे।

* * * *

आनन्दकिशोर

अब एक साधु महाराज का क़िस्सा कहता हूं, वह हैं हमारे आनन्द-किशोर। उनका हाल सुनकर तुमको हंसी भी आवेगी और आंखों में पानी भी निश्चय आवेगा।

शंकर दादा उस समय तीसरी बार जेल भुगतकर बाहर आये थे। कालिज के साथ उनका सम्पर्क पूरे तौर से समाप्त हो गया था। अब भी शहर में अड्डा गाड़ने की सख्त ज़रूरत थी। मेरे पिताजी उस समय जीवित थे। उनसे मैंने कहा—मफ़स्सिल के कालिज में लिखना-पढ़ना

कुछ नहीं होता। अब तक किसी तरह चला——अब अगर कलकत्ते जाकर वहां बी० ए० की पढ़ाई न करूंगा तो निश्चय ही फ़ेल हो जाऊंगा।

पिता जी ने हंसकर अनुमति दे दी। मामला उन्होंने अन्दाज से जान लिया था, लेकिन कुछ कहा नहीं। बड़ी उमंग से शहर में आया। कालिज में भर्ती हुआ। तीसरे पहर प्रायः रोज ही बराहनगर में नदी के किनारे ही एक एकमंज़िले टूटे-फूटे मकान में छत पर हम सब दल के लोग जुटते थे। कब तीसरा पहर होगा, इसकी चटपटी लगी रहती थी। केवल शंकर दादा नहीं, इस घर में उनकी मां रहती है। शंकर दादा की मां, याने हम सबकी मा——असीम धैर्य की मूर्ति। मां हंसते हुए मुह से हम सबको बुलाती हैं। इसी से तो सोचता हूं कि ऐसी मां हुए बिना कहीं शंकर दादा जैसा लड़का पैदा होता है।

लगभग दो महीने बाद की बात है। एक दिन देखा, सभी लोग आ गए हैं, सन्ध्या के बाद शंकर दादा आए, उनके साथ लगभग बीस बरस का एक सुन्दर लड़का था। अवाक् होकर मैं उस लड़के की ओर ताकने लगा। शंकर दादा ने कहा——बड़ा नाछोड़ बंदा है——बताओ क्या किया जाय! लेकिन बेला बहुत अच्छा बजाता है।——बेला अपना नहीं लाए आनन्दकिशोर?

बेला न लाकर जैसे बहुत बड़ा अपराध किया हो, इस तरह वह बेचारा गर्दन झुकाये बैठा रहा।

यह बेहाला बाद को एक दिन सुना था। जब तक बजाना चलता रहा, शंकर दादा चेयर ठोक कर सिर हिलाकर बेहद् तारीफ़ करते रहे। इसके बाद बोले——क्यों, अच्छा लगा न? सच बताओ।

मैंने कहा——हूं खूब ही अच्छा लगा, क्योंकि बन्द हो गया।

"ठट्ठा करते हो?" कहकर शंकर दादा आनन्द किशोर को सांत्वना

देने लगे---तुम कुछ खयाल न करो भाई। ये सब असुर हैं, सुर की खूबी क्या समझेंगे?

हिरण्मय ने कहा---स्वदेशी छोड़कर अब की एक रासमंडली खोल दो शंकर दादा। चौरंगी में गाना शुरू करो, अंग्रेज "बाप रे बाप!" कहकर भाग खड़े होंगे।

बेला बजाना बन्द करके आनन्द मलिन उदास मुंह लेकर नीचे उतरने लगा। शंकर दादा ने पुकारा—तुम्हें हुआ क्या? सुनो, सुनो—

आनन्द ने घूम कर कहा—तुम्हारा सब धोखाधड़ी है शंकर दादा। मैं बजाने तो आया नहीं। मैं काम चाहता हूं। उसके बारे में एक बात भी नहीं की।

खूब मजा आ रहा था। मैंने जाकर आनन्द का हाथ पकड़ा।

मैंने कहा—काम? क्या काम करोगे भाई? शरीर में तो देखता हूं, हाड़-मांस नहीं है, जान पड़ता है, रुई का बना है। क्या-क्या कर सकते हो, बताओ—

शंकर दादा ने कहा—यही बेला बजा सकता है, और झगड़ा कर सकता है। दिन-रात मुझसे झगड़ा करता है। कहता है—काम दीजिए, काम दीजिए।

आनन्द ने कहा—झगड़ा किये बिना क्या आप लोग शाइस्ता होते हैं शंकर दादा। आप बड़े ही पक्षपाती हैं—एक ही आंख रखते हैं---

हमलोग स्तम्भित हो गये। यह लड़का कहता क्या है? शंकर दादा से इतनी बड़ी कड़ी बात कहने का साहस इसे कैसे हुआ?

लेकिन शंकर दादा धीरे-धीरे हंस रहे थे। बोले---सुन लिया मुन्नू? बात का ढंग देख। इसी तरह जब तब गाली देता है।

अतएव मैं समझ गया, इस अभागे का भी हम लोगों की तरह मरण हुआ है। उसके बहुत ही निष्कलुष मुख की ओर देखकर मुंह से एक सांस निकल पड़ी। मैं शंकर दादा की तरह दृढ़ तो अभी तक नहीं हुआ। आंखों का पानी, मर्मस्थल का निश्वास अभी थोड़ा-बहुत है। मैंने कहा—उसने कुछ अनुचित तो कहा नहीं शंकर दादा।

शंकर दादा ने कहा—तुम लोगों का भी क्या यही मत है ?

मैंने कहा—हां, सचमुच तुम एक ही आंख से देखते हो। इतने बरसों तक गुरु का मान देते आ रहे हैं हम लोग, और आज तुम न जाने कहां से इस नन्हें से मक्खन के पुतले को जुटा लाये और लाते ही अपनी गोद में ले लिया। इससे क्या ईर्ष्या नहीं होती ?

शंकर दादा ने भलेमानुस की तरह मुझे उंगली से दिखा कर आनन्द से कहा—आनन्द, यह मुन्नू है हमारे दल का सेक्रेटरी। वह जब तक न दे तब तक किसी को कोई काम नहीं मिलता। इसे पकड़ो, अच्छी तरह पकड़ो, किसी तरह न छोड़ना ! समझे ?

लड़के ने यह विश्वास कर लिया। उसके बाद मेरे लिए कैसी मुश्किल हो गई, यह मैं तुमको किस तरह समझाऊं भाई ? सबेरे, दोपहर को, शाम को, जब देखो तब धरना देता था—उसकी एक ही रट थी—काम दीजिए, काम दीजिए।

अन्त को शंकर दादा को मैंने पकड़ा। कहा—अब तो मेरी जान नहीं बचती। दोहाई है दादा, मेरा पीछा छुड़ाओ।

शंकर दादा हंस दिये। बोले—क्यों, कैसा छकाया ? फिर निन्दा करेगा मेरी ? नाक रगड़ पहले।

भादों का महीना आ गया। अखबारोंमें बढ़िया की खबर निकल रही है। तरह-तरह की समितियां और दल निकल आये हैं। हारमोनियम गले

में लटकाकर रास्ते-रास्ते गाना गाकर बहिया के लिए दान और चन्दा मांगा जा रहा है। इसी समय कई दिन में गांव में घूम आया। क्यों, यह न बताऊंगा। कुछ अन्दाज़ कर लो। सभी जानते हैं कि जन्माष्टमी की छुट्टी में पिताजी को देखने गया था। किसानों के मोहल्ले में घूमता था। उनसे बातचीत करके देखा कि दो बेला मोटी रोटी मोटा भात खा लेने और समूचा मोटा कपड़ा पहन लेने को ही उन्होंने मानव-जीवन की चरम-विलासिता जान रखा है।

यही सब बातें हो रही थीं। मैंने कहा—सब मनुष्य भूखों मर रहे हैं वहां।

शंकर दादा ने कहा—मरें।

मैंने कहा—आप समझते हैं, मैं बढा चढ़ाकर कह रहा हूं। बिल्कुल नहीं। चावल की दर क्या है, जानते हैं?

अत्यन्त सहज कंठ से शंकर दादा ने कहा—मैं तो सही कहता हूं। मर जायं। खाने के लिए जब कोई आदमी न रहेगा तब चावल की दर घट जायगी।

हिरण्मय ने बिगड़कर कहा—तुम पत्थर हो—एकदम पत्थर—

"यह क्या तुम्हें आज मालूम हुआ?"—कहते-कहते जैसे शंकर दादा अनमने से हो गये। बोले—यह बात सबसे पहले कही थी मेरी दादी ने। उन्होंने मुझे पाला-पोसा था। सामना होते ही रोने-धोने लगती थीं। खबर आई, वही मेरी दादी मृत्युशय्या में पड़ी हैं। मैं घर नहीं गया, चला गया कोठी की बस्ती में।

आनन्दकिशोर भी वहां पर था। वह मेरा हाथ पकड़ कर बरामदे में ले गया। चुपके-चुपके बोला—अब की मुझ काम देना होगा मुन्नू दादा, नहीं तो मैं आपके पैरों में माथा पटक-पटककर जान दे दूंगा।

मैंने पूछा—हुआ क्या है ?

आनन्द ने कहा—आपके इन किसानों की व्यवस्था मैं करूंगा।

मैंने कहा—मुर्दे जलाने की व्यवस्था ?

जीभ काटकर आनन्द ने कहा—छी ! छी ! आप भी क्या कहते हैं ! उन्हें बचाऊंगा, कितना रुपया वसूल कर लाऊंगा, देखिएगा।

मैंने कहा—शंकर दादा ने क्या कहा है, तुमने सुना तो ?

आनन्द ने कहा—यह मैं नहीं मानता। उनकी जोड़ तो भारत म क्या, पृथ्वी पर नहीं है। यह सब क्या उनके मन की बातें हो सकती हैं? कभी नहीं।

अबोध लड़के ! इस मनुष्य जैसा कोई भारत भर में—दुनिया भर में—नहीं है, लेकिन उसके मनको तू न समझ लिया है तुम्हारे-मेरे दस आदमियों का जैसा। बड़ी-बड़ी आंखें फैलाकर आनन्द मेरी ओर ताकता रहा। बोला—एक बार मुझ पर विश्वास करके देखिये न। प्राणों की मैं परवाह नहीं करता। सिर्फ़ एक—

हाथ के इशारे से उसने मेरा रिवाल्वर दिखा दिया। हंसी को दबा कर मैंने कहा—रिवाल्वर ?

आनन्द ने कहा—एक बार देकर देखिये। काम न कर सकूं तो लौटा लीजियेगा।

आनन्द मेरे पीछे-पीछे चलता रहा। गली के मोड़ पर आकर मैंने उसे एक दुमंज़िला घर दिखा दिया। ऊपर रौशनी हो रही थी। अर्गन की आवाज़ आ रही थी। मैंने उसके कान में कहा—सीधे ऊपर चले जाना—समझे ? नौकर-चाकर सब नीचे हैं। घर के आदमियों में केवल एक औरत है—छोकरी। और सभी न्योते में गये हैं। कर सकोगे तो ?

गर्दन हिलाकर आनन्द ने कहा—खूब···खूब। एक लड़की ही तो है! यह काम ऐसा कौन कठिन है? तो आप इसी जगह खड़े रहिए—

मैंने कहा—खड़े रहना होगा? लौटते समय शायद भूत का डर मालूम होगा?

गैस की रोशनी में मैंने देखा, उसका चेहरा लाल हो उठा। वह बोला—जाइए, आप चले जाइए मुन्नू दादा। ना, किसी तरह यहां ठहर न सकेंगे।

हंसते-हंसते पार्क के कोने में बेंच के ऊपर मैं बैठ गया। अभी ज़रा देर पहले वर्षा हो गई थी। पार्क में पानी भर गया था। मैंने मन में सोचा, कहां तक इस तरह भीगता रहूंगा। घर चलकर लेट रहूं। पहचान का आदमी है, परिचित घर है—कोई डर तो है नहीं।

यह घर हमारे दल के सरोज पाकड़ाशी का था। सरोज का ज़िक्र पहले ही कर चुका हूं। तीन महीने पहले सरोज जेल में बन्द कर दिया गया है। उसकी बहन निरुपमा ने भी प्रायः तभी कॉलेज छोड़ दिया है। अब दादा के बकने का डर नहीं है। होस्टल छोड़कर निश्चिन्त होकर घर में आकर बैठी है।

दूसरे दिन इसी बारे में बात-चीत हो रही थी। निरुपमा उर्फ़ निरू आई है। वह बहुत कम यदा-कदा ही आती है। किन्तु विशेष करके इस रोमांचकर स्वदेशी डाके का हाल कहने के लिए उस दिन आई थी। हंस-हंसकर बदस्तूर शाखा-प्रशाखा जोड़कर—पल्लवित करके उसने सब हाल कहा था। कोई बात सहज सरल भाव से कहना उसकी जन्मपत्री में ही नहीं लिखा। और आनन्द के साथ पहले उसका परिचय भी नहीं हुआ था।

निरुपमा ने कहा—लेकिन इस स्वदेशी डकैत—यानी आनन्द—को

जानने पहचानने में केवल एक मिनट का समय लगा। एक ही बात में वह समझ गई कि यह कोई डाकू नहीं, अत्यन्त भला आदमी, साधु-सज्जन निष्कपट व्यक्ति है। निरू ने कहा--दुमंज़िले पर आकर दम्भ करके मेरे सामने आकर खड़े हो गये।

आनन्द ने पहला वाक्य यह कहा---इतने गहने न पहनने चाहिए।

निरुपमा ने कहा--आप पहनिएगा? साध हुई है?

खीझ के स्वर में आनन्द ने कहा--यह सब सुनने के लिए मैं नहीं आया हूं। चन्दा चाहता हूं---देश के लिए---

निरू ने कहा--चन्दा तो लोग दो-चार आने वसूल करते हैं, होस्टल में जाकर उसका चाप-कटलेट खाते हैं। आप समूचा गहना चाहते हैं; जान पड़ता है इससे दालान कोठा बनवावेंगे?

आनन्द ने रिवाल्वर निकाला।

निरू ने निर्भय भाव से कहा--यह क्या है? अच्छा तो है! इधर लाइए, ज़रा देखूं तो।

भोली-सी बन कर निरू आगे बढ़ आई। आकर एकदम जैसे आनन्द के सिर पर पहुंच गई। अज्ञात अपरिचित पराये घर में इस तरह की एक किशोरी का सामना--आनन्द की मुश्किल ज़रा सोचकर देखिए। वह पीछे हटने लगा और निरू आगे बढ़ने लगी। पिछड़ते-पिछड़ते आनन्द भीतर की ओर के दरवाज़े तक पहुंच गया।

निरू ने तब भी उसे रिहाई नहीं दी। बोली--दरवाज़ा बन्द है। जाइएगा कैसे?

आनन्द ने कहा--किसने कहा, मैं जाता हूं?

निरू ने कहा--ओह, जाइएगा नहीं---रहिएगा शायद? तो बैठिए। बहुत हांफ रहे हैं। शर्बत ले आऊं?

आनन्द ने यथासम्भव कठिन होकर कहा—इस कमरे से आप नहीं जा सकतीं। समझता हूं मैं—आप पुलीस में खबर देना चाहती हैं।

निरू खिलखिला कर हंसने लगी। वह हंसी जैसे रुकना ही न चाहती थी। बोली—राम कहो! आप भले आदमी हैं—साधु महाराज हैं—पुलीस बुलाकर आपको दिक़ करूंगी भला—मुझे क्या अपने परलोक का भय नहीं है?

आनन्द ने कहा—आप जो सोचती हैं, मैं वह नहीं हूं।

निरू ने कहा—आप मन की बात जान लेते हैं? बताइए न, मैं क्या सोच रही हूं—सच बताइए—

अभागी लड़की ने किया क्या—एकदम हाथ पकड़ कर आनन्द को सोफ़े पर बिठा दिया। बोली—गाना सुनियेगा? चुपचाप बैठकर सुनिए। जरा हिले नहीं कि चिल्ला कर पुलीस को पकड़ा दूंगी।

आप अर्गन के पास जाकर बैठ गई।

आनन्द ने कहा—वाह, मुझे बेवकूफ़ बनाना चाहती हैं?

निरू ने कहा—ना, ना, आपको क्या बनाने की जरूरत है?

आनन्द उठकर खड़ा हो गया। रूखी आवाज से बोला—इन बातों से आप मुझे बहला नहीं सकेंगी—समझीं?

निरू ने कहा—आपको बहलाने की कोशिश करूंगी—बापरे! मुझे क्या डर नहीं लगता? इन चूड़ियों के ऊपर ही तो आपकी नजर है?—लीजिए उतारे देती हूं—पाकेट में रख लीजिए। और मैं भी इस कमरे से हिलूंगी नहीं। तब तो आप को मेरा गाना सुनने में आपत्ति नहीं है?

निरू ने चूड़ियां उतार कर आनन्द के सामने रख दी। बोली—बस, ये दो चूड़ी दोनों हाथों में रख ली हैं। इसमें आपको कोई आपत्ति है? बोलिए।

अब की आनन्द सचमुच बिगड़ उठा।

बोला—अच्छी लड़की हैं आप तो! आपको डर नहीं लगता?

मुंह भारी करके निरू ने कहा—बेकार बकिए नहीं, कहे देती हूं। भय के बिना क्या कभी औरतें गहना उतार देती हैं? मैं डर गई हूं—सच कहती हूं—क़सम खाकर कहती हूं।

आनन्द ने कहा—आप डर गई हैं? होठ दबाकर हंस रही हैं, जैसे मैं कुछ समझता नहीं।

ख़फ़ा होकर वह कमरे के बाहर हो गया। पीछे से निरू पुकारने लगी—अजी चूड़ियां तो यहीं पड़ी हैं—लेते जाइए।

आनन्द ने घूमकर देखा भी नहीं।

सब वृत्तान्त सुनकर सभी हंसने लगे। हिरण्मय की भौहें सिकुड़ गईं। उसने कहा—इस तरह के हंसी-ठट्ठे का नशा तुम पर चढ रहा है मुन्नू! जानते हो, हमारा यह काम हंसी-खेल नहीं है।

निरू ने गर्दन हिलाकर कहा—हंसी-खेल तो नहीं ही है। इसीसे मैं शंकरदादा से कहती हूं कि इन सब साधु-महापुरुषों को आप ले आ रहे हैं; ये लोग क्या करेंगे भला?

शंकरदादा चुपचाप बैठे थे। बोले—ना, साधु मनुष्य क्यों रहेंगे, केवल तुम लोगों के रहने से ही काम होगा! पृथ्वी की मिट्टी अब भी नरम है, यह आनन्द को देखकर याद आ जाता है।

इसी समय आनन्द वहां आ गया। निरू को वहां देखकर ठिठककर खड़ा हो गया।

निरू ने कहा—मुझे पहचान सकते हैं?

आनन्द ने ख़फ़ा होकर कहा—ना।

निरू ने कहा—मैंने तो अच्छी तरह पहचान लिया आप को।

आनन्द ने कहा—यह मैं जानता हूं। आप पहले ही जानती थीं। इन लोगों ने बतला दिया है। यह एक षड्यन्त्र है। मैं पहले इसे समझ नहीं पाया।

ज़रा देर चुप रहकर आनन्द ने फिर कहा—रिवाल्वर के सामने जो लड़की दिमाग़ करके खड़ी रह सकती है, वह हमारे ही दल की हो सकती है। बाहर का कोई उतना निश्चिन्त निडर नहीं हो सकता—यह मुझे ही समझ लेना चाहिए था।

मैंने कहा—नहीं आनन्द, वह असली रिवाल्वर ही न था। तुम्हारे हाथ में जो था, वह चीज़ मुर्गीहट्टा में मिलती है ढाई रुपए में।

शंकर दादा ने हंसकर कहा—परीक्षा में तुम हार गये न आनन्द भाई। और किसी दिन यह सब मांग न सकोगे। तुम क्या इन लोगों की तरह फ़ालतू आदमी हो! समझ देखो, एक लड़की को भी तो तुम डरा न सके।

आनन्द ने कहा—हूं, लड़की! भयानक लड़की है यह!

कहकर आनन्द गुमशुम होकर बैठ गया।

निरू ने मुझ से चुपके चुपके कहा—साधू महाराज का मुंह ज़रा देखो एक बार। दुःख हुआ है। होने की बात ही है। सच्चा रिवाल्वर क्यों नहीं दिया मुशू दादा—उससे भी कोई ख़तरा न था, यह मैं हलफ़ करके कह सकती हूं। तुम्हारा ही अन्याय है।

मैंने कहा—और तुम्हारा भी अन्याय है निरू। तुम अगर ज़रा सा भी डरने का भाव दिखाती तो उसे इतना कष्ट कभी न होता।

तब शंकर दादा के साथ आनन्द की बातचीत हो रही थी। शंकर दादा उसे प्राय: छाती के पास खींच कर स्निग्ध कंठ से कह रहे थे—तुझे खूब व्यथा पहुंची है—क्यों न?

"ना" कहकर होठ से होठ दबाकर आनन्द प्राणपण से उमड़े हुए आंसुओं को संभालने लगा।

शंकर दादा मेरी ओर देखकर कहने लगे—अब तुम लोगों के साथ नहीं मिले-जुलेगा यह मेरा भाई। दुःख-कष्ट वह आप अपनी छाती आगे करके लेता है—किसी को दुःख नहीं दे सकता।

आनन्द ने फुस फुसाकर शंकर दादा के कान में कहा—और आप भी।

शंकर दादा ने कहा—कहता क्या है रे! यह तो नई बात तू सुना रहा है! पुलीस की मेरे बारे में रिपोर्ट तो देख आ ज़रा—

आनन्द ने मजबूती के साथ उनके दोनों हाथ पकड़ कर कहा—पुलीस ने सब बनाकर झूठ लिखा है। जानो मैं जानता नहीं।

शंकर दादा हो-हो करके अट्टहास कर उठे। बोले—तुम लोगों ने सुन लिया? मुझे नया सर्टीफ़िकेट दे रहा है—मुझ में भयानक माया-मोह और ममता है! मेरी दादी का किस्सा जान पड़ता है, इसने नहीं सुना।

आनन्द ने कहा—सुना है दादा। कोठी की बस्ती में मालिकों ने आदमियों को जानवर की तरह रखा था। आप की सी हमदर्दी किसमें है? उनके दुःख को दूर करने के लिए आप दादीजी के भी अन्तिम दर्शन नहीं कर सके।

शंकर दादा ने कहा—जानवरों के लिए मनुष्य को दुःख—मनुष्य की हमदर्दी? तू कह क्या रहा है—

आनन्द ने कहा—नहीं होती?

शंकर दादा ने निर्मम कंठ से कहा—ना। हमदर्दी कहो, दुःख कहो, वह अगर मुझ में कुछ है तो वह सब आगामी समय के सच्चे स्वतन्त्र मनुष्यों के लिए संचित है। जिन की रीढ़ टूटी है, जो सिर्फ़ बोझ ढोने

के लिए हैं, उन आज के बैलों-गधों (जैसे मनुष्यों) के लिए मैं तनिक भी नहीं चिन्ता करता।

ऊंचे स्वर से आनन्द ने कहा—तो फिर आप दादी को देखने न जाकर कोठी की बस्ती की ओर क्यों दौड़े गये थे?

शंकर दादा ने कहा—वहां एक हंगामा खड़ा हो गया था, वह जिसमें मिट न जाय—पीड़ितों का विद्रोह शान्त न हो जाय, इसलिए। मैं आग को बुझाने नहीं, सुलगाने गया था।

आनन्द ने पूछा—देश की छाती पर दावानल फैलाने में आप को आनन्द होता है?

शंकर दादा हो-हो करके हंसने लगे। बोले—हां, टूटी डालें और झड़ पड़े पेड़-पत्ते सब जलकर खाक हो जायें। उसके बाद यह श्मशान फिर हरा-भरा हो उठेगा।

अस्फुट आर्त्तनाद करके आनन्द ने दोनों हाथों से मुंह ढक लिया। वह कैसी असहाय की अवस्था थी, यह तुम को समझा न सकूंगा। शंकर दादा स्तबब्ध होकर थोड़ी देर उसके मुंह की ओर ताकते रहे। उसके बाद बोले—निरुपमा ने ठीक नाम रखा है—साधु महाराज। तुम किसी आश्रम में चले जाओ आनन्द। आश्रम मेरा जाना-सुना है। मैं कहकर वहां तुमको रख दे सकता हूं।

इसी समय शंकर दादा फ़रार हो गये। ऐसे अवाक् विस्मय से तुम लोग क्या ताक रहे हो? वह कुछ ऐसी भयानक बात न थी। निरू के घर के दूसरे खंड में मजे में पड़े-पड़े सोते थे। निरू की आंखों के सामने—इसी से समझ सकते हो, उन्हें किसी तरह को असुविधा हो ही नहीं सकती थी। मय गद्दे का बिछौना और मसहरी तक थी। केवल किसी किसी दिन बहुत रात गये भागकर वराहनगर चले आते थे। हम लोग

बिगड़ते थे—कहते थे, सुख से रहने में तुम्हें चैन नहीं पड़ती दादा। किसी दिन मरोगे (अर्थात् पकड़ लिये जाओगे)—

शंकर दादा सूखे मुंह से कहते—वही तो। तुम लोगों न मुझ चिन्ता में डाल दिया। सर्वनाश! एक दिन मैं मरूंगा! एकदम आप्त-वाक्य (वेदवाक्य) की तरह सुनाई देता है जी।

आनन्द उसी दिन से बहुत कम आता था। कभी अगर आता भी था तो सिर झुकाये चुपचाप रहता था। किसी तरह के काम की बात चलते ही खिसक जाता था। इसके बाद एक दम गोता लगा गया।

आठ-दस महीने तक फिर वह न देख पड़ा। एक दिन बहुत तड़के मेरे घर में एक प्रेत की सी सूरत का आदमी आया। बात किये बिना उसे पहचानना बहुत कठिन था। कैसा बीभत्स कुरूप चेहरा था।

देखकर मैं चौंक उठा—तुम हो आनन्द?

वह हंसने लगा।

मैंने कहा—यह क्या हुआ रे? इतने दिन कहां था?

उसने कहा—अस्पताल में था मुन्नू दादा। अच्छा रहता तो क्या देख न पाते? आप लोग मुझसे चाहे जितनी घृणा करें—मैं जरूर आता।

मैंने कहा—हम घृणा नहीं करते भाई। लेकिन यह तुम्हारा गुलाब सा चेहरा जलकर—

उसने हंसते हुए कहा—हनुमान बन गया हूं न? मैं तो बहुत खुश हुआ हूं। इस मुंह के लिए आप लोगों ने कितनी हंसी उड़ाई है। कहते थे—यह औरत है—और भी न जाने क्या-क्या! अब?

मैंने कहा—मामला क्या है, बताओ तो सही।

उसने कहा—आतशबाजी बना रहा था।

मैंने कहा—–कौन सी आतशबाजी? बम? ठीक-ठीक बताओ। छिपाना नहीं।

अभिमान के स्वर में आनन्द कहने लगा—–वह चाहे जो हो, आप लोगों को उसे सुनकर क्या करना है मुन्नू दादा? आप लोग तो मुझ पर विश्वास नहीं कर सके! मैंने अगर खुद कुछ किया तो क्या हर्ज है? देखो, अब तो मेरा चेहरा औरतों का सा नहीं है?

मैंने कहा—–तुम्हारा मन तो नहीं बदला भाई। तुम जाओ, लिखो-पढ़ो जाकर। यह रास्ता छोड़ दो।

आनन्द स्तब्ध होकर कुछ देर बैठा रहा। इसके बाद पास आकर एकाएक पैर छुए। बोला—–यही ठीक है। चलता हूं मुन्नू दादा। अब फिर किसी दिन आप लोगों के पास नहीं आऊंगा।

फिर कई दिन तक मैं कलकत्ते के बाहर रहा। आते ही निरुपमा के घर गया। शंकर दादा ने कहा—मैं तो मर गया हूं मुन्नू। आज का अखबार तुमने नहीं देखा?

मैंने कहा—–यह कैसी बात है?

शंकर दादा ने कहा—यह अखबार देखो—–

अखबार में शंकर सरकार के मरने की खबर पढ़ी। श्यामबाजार के एक घर में पुलीस के साथ स्वदेशीवालों का संघर्ष हुआ था जिसमें गोलियां चली थी। फलस्वरूप कई आदमी मारे गये; उनमें शंकर सरकार का नाम भी था।

शाम को पता लगाकर लौटा। निरू ने कहा—–हमारे वही साधु महाराज। क्यों न शंकर दादा?

"हां" कहकर शंकर दादा ने बतलाया—–आनन्द ने न जाने कहां से शंकर दादा के नाम की कई चिट्ठियां प्राप्त कर ली थीं। उन्हीं को जेब

में रख छोड़ा था। मुंह जलाकर पहले ही ऐसा बना लिया था कि पहचानना असम्भव सा था।——

शंकर दादा का कलेजा पत्थर का है। तो भी जैसे उनका स्वर यह कहते समय कुछ कांप उठा। अथवा मेरी ही भूल हो। यह हिमालय आंधी-तूफ़ान में विचलित होनेवाला नहीं। बाहर की ओर ताक रहे थे। कोमल स्वर में बोले——भोले लड़के! इतने सहज में क्या शंकर सरकार को ठगा जा सकता है? बेकार ही तू ने अपने प्राण दे दिये।

निरू को आनन्द इतना चिढ़ाती थी, बनाती थी। इस समय किन्तु उसके आंसू भी रोके नहीं रुकते थे। बोली——एक फूल आग में झुलस गया शंकर दादा।

शंकर दादा ने कहा——नया सूर्य निकलेगा ही। उसके पहले आनन्द गया, मैं भी जाऊंगा। इसी तरह कितने ही इस संसार से चले जायंगे। रोने से कहीं काम चल सकता है बहन?

उस नवीन सूर्य का आज उदय हो रहा है। शंकर दादा भी नहीं हैं। किन्तु उसके पहले निरुपमा का वृत्तान्त शुरू से कह लूं। सुनो। निरुपमा के साथ मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है कि नहीं। वह मेरी फ़र्जी पत्नी है। लेकिन ख़बरदार भाई, मल्लिका (धर्मपत्नी) के कानों तक यह बात न जाय। वह जेल नहीं गई; किन्तु घर में बैठकर जो कुछ सहा है, वह तुम्हारे-हमारे कष्टसहन से कुछ कम नहीं है। क्या जानें, मल्लिका इस बात को सुन कर क्या समझ बैठे——यही मुझे डर है।

* * * *

निरुपमा

उन दिनों श्यामबाज़ार की एक गली में मैं किराये का घर तलाश करता फिर रहा था। उस गली के एक ख़ास घर के आस-पास हममें से दो-एक आदमियों के रहने की ज़रूरत थी। माफ़ करना भाई, आज मैं इससे अधिक कुछ इस बारे में कह न सकूंगा। मतलब यह कि सुबह-शाम मकान की तलाश चल रही थी। किन्तु उस गली के लोग अकस्मात् जैसे बहुत बड़े आदमी हो उठे थे। घर किराये पर देने की गरज किसी को न थी। घर तो नहीं मिला, पर निरुपमा को मैं पा गया।

इस लड़की को मैंने केवल एक नज़र देखा। क़द और शरीर का गठन लम्बा-चौड़ा था। उस समय सन्ध्या की बेला थी। हाथ में सीढ़ी लटकाये म्यूनिसिपैलटी के आदमी गैस के लैंप जलाते फिर रहे थे। बट-तला में सेंदुर से रंगे बहुत से पत्थर रखे हैं। उन्हीं के सामने उन लोगों का छोटा सा दुमंजिला मकान है। घर के भीतर घुसकर उस लड़की ने किसी तरफ़ देखे बिना दरवाजा बन्द कर दिया।

दिमाग़में एक मतलब आया। इस लड़की को अगर मैं अपने दल में शामिल कर सकूं तो घर न मिलने पर भी काम चल जायगा। उसका मैंने पीछा पकड़ा। कई दिन बीत गये। एक दिन कॉलेज से लौटते वक़्त वह खटाखट तेज़ी से चली आ रही थी। मैं ख़ूब सावधानी के साथ उस के पीछे दूर-दूर चल रहा था। गली में घुस कर वह आंखों की ओट हो गई। मिनट भर के बाद में मोड़ घूम कर जैसे गली में घुसा, देखा, एक दीवाल से लगी वह खड़ी है। चुपचाप मेरी प्रतीक्षा में। उस समय वह रणरंगिनी चंडिका जान पड़ती थी—तेवर चढ़े हुए थे। जान पड़ता

था, मार ही बैठेगी। रक्षा का साधन पास कुछ न था, केवल दो-तीन मोटी मोटी पुस्तकें हाथ में थीं।

निरू ने कहा—तुत मेरा पीछा क्यों कर रहे थे?

मैंने कहा—रास्ता क्या किसी एक का है?

उसने कहा—बतलाओ, किस लिए?

मैंने कहा—किसी भले आदमी से जिस तरह अनुरोध किया जाता है उस तरह पूछो तो मैं जवाब दूंगा।

उसने कहा—आप भले आदमी हैं?

मैंने कहा—देखो, मैं किस तरह कैसे फ़िटफ़ाट कुर्ता-धोती पहने हूं—मुझे तुम भला आदमी नहीं समझतीं?

निरुपमा ने एकदम अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया। इसी बीच में उसने अवश्य ही अनेक बार मुझे सिर से पैर तक देख लिया था। देख लेना कहना ठीक न होगा—नजर से जैसे मेरे शरीर में आग बरसा दी थी। व्यंग्य के स्वर में उसने कहा—यह बंगाल देश है कि नहीं—इसी से आप लोगों को लोग भला आदमी—भद्रपुरुष—कहते हैं।

मैंने कहा—सभी देशों में हम लोग भद्रपुरुष कहलाते हैं। असहाय लड़की के साथ-साथ जाकर उसे उसके घर सकुशल पहुंचा देते हैं—यह काम वीर-धर्म के दायरे में आता है, यह आप जानती हैं?

निरू ने कहा—मैं असहाय हूं?

मैंने कहा—निश्चय। कोई विशेष अस्त्र-शस्त्र तो आप के पास देख नहीं पड़ता। कोई आकर आप का हाथ पकड़ ले—

निरुपमा ने मुंह फेर लिया। बोली—मैं चिल्लाऊंगी। यह हमारा मोहल्ला है—यहीं पैदा हुई, इतनी बड़ी हुई हूं।

मैंने कहा—उसके पहले अगर वह आपका मुंह बांध दे। एकाएक

पीछे से आकर मेरे गले की इस चादर जैसे किसी कपड़ से मुंह बाँध देना भी कुछ कठिन नहीं है।

निरुपमा तनकर खड़ी हो गई। बोली—— आपका मतलब क्या है ?

मैंने हंसकर कहा——मतलब और चाहे जो हो, आप का मुंह बाँधना या हाथ पकड़ना नहीं है। उसके लिए मैं चार बजे से यहाँ नहीं खड़ा था।

निरुपमा के घर के पास हम पहुंच गये थे। दरवाज़े पर खड़े हो कर उस ने कहा——आइएगा ?

मैंने कहा——ना।

निरू ने कहा——डर लगता है ?

मैंने कहा—भय का कोई नमूना क्या आपने कुछ देखा है ? युद्ध और प्रेम में भय करने से काम नहीं चलेगा।

अब की वह ज़ोर से हंस पड़ी। असाधारण लड़की है, यह बात इस पहली बातचीत में ही मुझे मालूम हो गई।——बोली——ओह, अवस्था सांघातिक है तब तो।

मैंने कहा——किन्तु, प्रेम नहीं है।

निरुपमा——तो शायद युद्ध है——किस के साथ—मेरे ही साथ ?

मैंने कहा——पहली बातचीत में वह बात न सुनने से कोई हर्ज न होगा। कल तीसरे पहर फिर आऊंगा और उसी जगह खड़ा रहूंगा, तब सब बताऊंगा।

दूसरे दिन फिर भेंट हुई। उस के बाद फिर भी। याद रखिए, यह पचीस-तीस वर्ष पहले की बात है। आजकल की अपेक्षा तब अधिक कड़ी देख-रेख थी। एक तरह का काम औरतें ही अच्छा कर सकती हैं। हम लोगों के दल में दो-चार औरतों की ज़रूरत थी, इसी लिए राह-

घाट में ऐसी निर्भीक औरतों की तलाश में हम घूमा करते थे।

निरुपमा के घर के बारे में मैंने जो सुना वह एकदम आशातीत था। परिवार में दो भाई, एक बहन और उन की बूढ़ी मा हैं। मा की आँखों में धूल डालना कुछ कठिन नहीं। छोटा भाई नाबालिग है। और बड़ा भाई—जिस का नाम आप पहले ही सुन चुके हैं—सरोज पाकड़ाशी है।

हम लोगों का सरोज? शंकर दादा ने कहा—सरोज की बहन है, यह कहो। ऐसी इस्पात की बनी औरत जहां तहां पा जाओगे भला? मैं तो सुनकर आश्चर्य कर रहा था।

मैंने कहा—तुम्हारे सरोज को तो हमने देखा नहीं दादा।

शंकर दादा ने कहा—देखोगे किस तरह? कै दिन वह जेल के बाहर रहता है?

जरा देर चुप रहकर कहने लगे—अभागा कहता क्या है? दो महीने भी अगर जेल के बाहर रहने दें, चुटकी बजाते देश को स्वाधीन कर दूंगा। सो अधिकारी लोग दो दिन भी उसे जेल के बाहर रखकर चैन नहीं पाते। अच्छा हुआ, अब लड़की एकाग्र होकर देश के काम में लग जाय।

मैंने कहा—लेकिन वह तो हमें बिलकुल अमल में ही नहीं लाती—हमारी पर्वा ही नहीं करती शंकर दादा।

वास्तव में निरुपमा ने जीना मुश्किल कर दिया है—कहती है, सब झूठ बात है। आप सब धोखेबाज हैं। मैं यह सब तिल भर भी विश्वास नहीं करती।

मैंने शंकर दादा से कहा—ऐसे सब घनिष्ठ विशेषणों का प्रयोग हमारे लिए निरू करती है कि उससे मुझे इतनी प्रत्याशा नहीं है।

मैं जब कुछ कहता हूं तो बड़ी-बड़ी कजरारी आंखें फैलाकर ज़रा देर मेरी ओर ताकती रहती है। अन्त में कहती है--अच्छा, ले आइए एक दिन शंकर दादा को। हमारे घर उनका न्योता रहा। वह अपने मुंह से आकर कहें।

गर्दन हिलाकर मैं कहता हूं—इस समय यह हो नहीं सकता।

वह कहती है—क्यों? कलकत्ते में नहीं हैं? कहां हैं वह?

मैं कहता हूं—सरोज की बहन को क्या यह भी समझाने की ज़रूरत है कि ये सब बातें पूछने की नहीं हैं?

निरू का उच्छ्वास थम जाता है। लज्जित होकर चुप हो जाती है।

एक दिन मैंने कहा—इतने सहज में शंकर दादा को नहीं पाया जा सकता।

उसने कहा—उसके लिए क्या करना होता है?

मैंने कहा—साधना करनी होती है। देखती नहीं हो, सरकार वर्षों से कैसी असाधारण साधना में लगी हुई है।

उसने कहा—मैं तो सरकार की कोई नहीं हूं।

मैंने कहा—इसलिए एक दिन उनके दर्शन पाओगी, निश्चय पाओगी। उनके काम में जुट जाओ।

निरू ने कहा—कम-से-कम मैं उनके हाथ का लिखा दो लाइन का हुक्म चाहती हूं—याने मैं उन्हीं को मानती हूं, एकमात्र उन्हीं को। आप लोगों को किसी को नहीं।

बराहनगर के उस एकमंजिले घर में उन दिनों एक रुई का गोदाम खुला था। गोदाम के पीछे के हिस्से में आधे अन्धकार में शंकर दादा किताबों के ढेर के भीतर डूबे रहते थे। जिस धुनिये का गोदाम था, वह हम लोगों का ही आदमी था। बाहर से यह नहीं समझा जा सकता

था कि उसके भीतर कोई आदमी रहता है। एक दिन हम कई आदमी वहां जमा थे। शंकर दादा ने कहा—लड़की ने न्योता दिया है तो चलें क्यों न—एक दिन अच्छा-बुरा जो मिले खा-पी आवें।

हम सबने ही जबर्दस्त सिर हिलाने के साथ कहा—ना—ना—ना—

उन्होंने हंसकर करा—तुम लोग कैसे जलकुकड़े हो—मेरा भला देख सकते हो? ···अच्छा लाओ, एक टुकड़ा कागज ही दे दो।

और कागज लेकर फ़ौरन् लिखना शुरू किया—श्री चरण कमलेशु—

हम लोगों के हंस उठते ही शंकर दादा ने कहा—क्यों, क्या हुआ?

मैंने कहा—वह क्या लिख रहे हैं आप? सत्रह-अठारह वर्ष की एक ज़रा-सी लड़की निरुपमा है दादा।

चिट्ठी निरुपमा के पास पहुंची। इसके बाद तो दिमाग से उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते थे। कहने लगी—देखिए मुन्नू दादा, खातिर तो देखिए ज़रा! श्रद्धास्पदा! शंकर दादा का सर्टीफ़िकेट है—अतएव आप लोग भी श्रद्धा करेंगे। समझ गये न?

इसके बाद बोली—आप लोगों को भी क्या वह इसी तरह लिखते हैं?

मैंने कहा—मैंने औरत का जन्म तो पाया नहीं, ऐसा भाग्य कहां से होगा? स्वामी विवेकानन्द की नज़र से वे लोग देश को देखते हैं। अनात्मीय महिला की यही एक मातृमूर्ति उन लोगों के निकट है।

सारांश यह कि मैंने जो चाहा था, वही हुआ। निरू हमारे दल को मिल गई।

अब वह जीवित नहीं है। अहा, अगर जिन्दा होती! तुम, मैं, सब आज सिर ऊंचा करके खड़े होना चाहते हैं, यह सब देखकर उसे कितना उत्साह होता! उसकी निर्भीकता उस समय हम लोगों की चर्चा और

आलोचना का विषय हो उठी थी।

दो महीने के बाद एक दिन हमारे अड्डे पर वह ज़मीन पर आसमान से टपक पड़ी। रात ज़्यादा जा चुकी थी; छत के ऊपर थोड़ी-थोड़ी चांदनी फैल गई थी; हम लोगों में बातचीत हो रही थी—सब बन्द हो गया। हम ताज्जुब में थे कि कहां से इसको यहां का पता लग गया और दरवाज़ा ही किसने खोल दिया! वैसे ही देखा हिरण्मय उसके पीछे है।

निरू ने जूते उतारते-उतारते एक नज़र सब पर डाल ली। इसके बाद शंकर दादा के पैरों में जाकर प्रणाम किया। मेरी ओर ताककर हंसते हुए मुझ से बोली—क्यों मुन्नू दादा, पहचान लिया कि नहीं?

मैंने पूछा—पहले कभी देखा था?

निरू ने कहा—कभी नहीं,—सूर्य को क्या पहचान रखने की ज़रूरत होती है? हज़ार आदमियों के बीच उनको छांट लेने में एक मिनट भी नहीं लगता।

शंकर दादा ने कहा—बाप रे, तुम कहती क्या हो जी! तुमने तो मन में डर पैदा कर दिया।

निरू ने कहा—आपके पास डर नाम की कोई चीज़ है क्या?

मैंने कहा—उनको डर नहीं है, हम लोगों को है। (शंकर दादा से) सुन लिया न? अतएव इस घर से तुम्हारा निकलना किसी तरह न होगा—एक क़दम भी नहीं—

शंकर दादा ने कहा—क्यों—बाहर निकलने से क्या होगा?

मैंने कहा—पुलीस के गोइन्दे पहचान लेंगे। पकड़कर जेल में बन्द कर रखेंगे।

शंकर दादा ने कहा—तुम लोगों ही ने कौन ऐसी स्वाधीनता मुझे दे रखी है।—निरू, तू जानती नहीं बहन—इन लोगों ने जीवन के प्रति

घृणा पैदा करा दी है। कोई काम मुझे न करने देंगे, कहीं जाने न देंगे। इस तरह जीने से लाभ क्या ?

निरुपमा शंकर दादा के पैरों के पास बैठ गई। हम लोग इधर क्रोध की आग में जल रहे थे। शंकर दादा न होते तो हम वहीं हिरण्मय का गला घोंट देते। हम इतनी सावधानी बरतते मरते हैं और यह अभागा एक लड़की को यहां पर ले आया!

आंख के इशारे से हिरण्मय को एक तरफ़ बुलाकर लिये जा रहा था मैं—देखा, शंकर दादा भी उठ खड़े हुए। बोले—हिरण का इसमें क्या दोष है?

मैंने कहा—ओह, तो तुमने उससे लाने को कह दिया था?

शंकर दादा जैसे चिढ़ गये हों, इस तरह बोले—न कहता तो उपाय ही क्या था? दुनिया के गुस्सेवर और चिड़चिड़े लोगों को इकट्ठा करके दल बनाओगे, और दोष की बेला हिरण्मय और शंकर दादा को पकड़ोगे!

निरुपमा के कानों में यह बात जाते ही उसने सिर झुका लिया। शंकर दादा ने हिरण्मय को कहीं भेज दिया। मैं व्यग्र हो उठा—इस बीच में ऐसा क्या घटित हो गया, जिसके लिए शंकर दादा ने चटपट हिरण्मय को भेजा। रात को फिर हम सभी तो आवेंगे—परामर्श करने का सबर भी न हुआ!

फिर शंकर दादा बैठकर निरुपमा को सान्त्वना देने लगे—दुखी क्यों होती हो बहन, तुम्हारा क्या दोष है? तुम केवल थाने तक गई थीं; हम होते तो 'महानन्द' को खतम कर डालते।

निरू ने पूछा—आप मनुष्य को मार सकते हैं शंकर दादा?

शंकर दादा ने जैसे इस प्रश्न को सुना ही नहीं। वह कहते ही गये—

मैं कहता हूं—ये सब बातें क्यों निरू? छी:—

निरू ने गर्दन हिलाकर कहा—मैं कहे देती हूं, यह (यानी शंकर दादा) कभी हत्या कर ही नहीं सकते। जिनके मन में इतना स्नेह है—

शंकर दादा ने कहा—तुम आदमी को मार सकती हो?

निरू ने कहा—मनुष्य को नहीं मार सकती, जानवर को मार सकती हूं। कम-से-कम—मार सकना चाहिए।

जरा चुप रहकर निरुपमा कहने लगी—एक समय था जब इस देश में जानवरों (नर-पशुओं) की बहुत अधिकता हो गई थी। मा-बहनों ने स्नेह से उनका लालन-पालन किया था। वे स्नेह और स्तन न देकर विष उन्हें दे देतीं तो अच्छा होता। तो फिर आज का यह दिन (परतन्त्रता) न आता। वैसा ही एक जानवर आपका यह महानन्द है।

शंकर दादा ने कहा—महानन्द तो हमारे दल का नहीं है—

मैंने कहा—यह इस पर विश्वास ही नहीं करना चाहती। मेरे साथ बेहद बहस कर रही थी।

महानन्द के साथ स्कूल में मैंने कुछ दिन पढ़ा था। तभी से हम लोगों में से दो-एक जनों के साथ उसका थोड़ा-बहुत परिचय है। महानन्द उसी के आधार पर गालियां देता फिरता था। निरू के घर से उसकी दूर के नाते की कुछ थोड़ी-सी आत्मीयता थी। उस दिन सबेरे के वक्त निरू ने मुझसे खूब जिरह की—आप तो कहते हैं, शंकर दादा यहां नहीं हैं।

मैंने कहा—थे नहीं, कई दिन हुए, आये हैं।

निरू ने कहा—झूठ बात। वह बराबर यहीं रहे। महानन्द काका कहते हैं।

उद्विग्न होकर मैंने प्रश्न किया—सर्वनाश! उसके साथ तुम्हारी ये बातें होती हैं क्या? वह आदमी निकम्मा है।

निरू ने कहा—निकम्मे आदमी हैं तो शंकर दादा ने उन्हें अपने साथ कसे लिया ?

मैंने कहा—शंकर दादा उसे जानते ही नहीं।

निरू ने कहा—कहते क्या हो ? शंकर दादा ने उनके द्वारा मुझसे गहने मांग भेजे थे। वह चिट्ठी तक मेरे पास है।

मैंने कहा—किस लिए मांगे थे ? पहनने के लिए ?

निरू ने चिढ़कर कहा—यह कौन कहता है कि पहनने के लिए मांगे थे ? शायद बेंचकर या गिरों रखकर काम में लावेंगे।

मैंने कहा—शायद शंकर दादा का ताल्लुका नीलाम हो रहा है, इसी से एक लड़की के गहने गिरों रखेंगे—क्यों न ?

निरू ने कहा—लेकिन रुपयों की क्या जरूरत नहीं है ?

मैंने कहा—है, लेकिन वह मामूली बात है। हम लोगों ने बहिया से पीड़ित लोगों की सहायता के लिए कोई समिति नहीं क़ायम की है कि तुम्हारे निकट दया का दान मांगने जायंगे निरू।

निरू जैसे क्षण भर निस्तब्ध हो रही। उसके बाद बोली—महानन्द काका ने मुझसे कहा कि वह शंकर दादा से भेंट और बातचीत करा देंगे—उनके घर मुझे ले जायेंगे।

मैंने कहा—सावधान निरुपमा, शंकर दादा के घर ले जाने को कह-कर वह तुम्हें थाने में ले जाकर खड़ा कर देगा। खूब सावधान रहो उससे !

थाने में महानन्द उसे नहीं ले गया, वह खुद गई थी। भोली लड़की! वह जो मैं शंकर दादा के हाथ की लिखी दो-एक पंक्तियों का काग़ज़ उसे दे आया था, उसी के अक्षरों से मिलाकर उसने महानन्द की दी हुई शंकर दादा की जाली चिट्ठी को देखा। जब उसे विश्वास हो गया कि

यह सब महानन्द की जालसाजी है, तब वह क्रोध के आवेश में थाने जाकर महानन्द के नाम अपने गहने चुराने की रिपोर्ट लिखा आई।

निरू ने कहा--मैंने खूब किया। जो देश का नाम लेकर और उसके साथ इतने बड़े आदमी का नाम लेकर लोगों को ठगता फिरता है, उसे सज़ा न होगी?

शंकर दादा ने कहा—उसके पहल तुम्हीं को सज़ा हो जाती। अगर समय पर मुझे खबर न मिल जाती तो तुम्हें इसका मज़ा मिलता।

निरू ने विस्मित होकर शंकर दादा की ओर ताका। वह कहने लगे—रिपोर्ट लिखाकर तुम तो खुश-खुश घर लौट आईं। उधर इन्क्वायरी के वक़्त महानन्द ने ढेर का ढेर सच-झूठ कहकर दिल का बुख़ार निकाला है। भाग्य से मेरे पास ख़बर आ गई। मैंने हिरण्मय को भेजकर तुमको गिरफ़्तार कर मंगाया। तुम्हारे घर में अबतक तलाशी की धूम मच गई होगी।

आज तीन-चार दिन से शंकर दादा बिल्कुल चौखट के पार नहीं गय, अथच सब ख़बर ठीक-ठीक उनके पास पहुंच रही है। अब हम इससे उतना विस्मित नहीं होते। वह कहन लगे—तुम गिरफ़्तार हो, समझीं निरू? हाथ-पैर में बेड़ी पड़ गई सभझो। अब तुम यहां से कहीं जा न सकोगी।

निरू ने धीरे से कहा—मैं वैसे ही भाई के लिए खाना बनान बैठी थी। आज रसोइया महराज नहीं आया था न!

शंकर दादा ने कहा—इन सब बातों की चिन्ता न करो। तुम्हारे भाई के खाने-पीने का बन्दोबस्त हुए बहुत देर हुई। लेकिन तुम्हारा क्या बन्दोबस्त करूं---बताओ। तुमने मुझे बहुत चिन्तित कर दिया।

निरू सबसे ऊपर की कोठरी में रही। हम कई आदमी रहे दूसरी मंज़िल में।

दूसरे दिन निरू ने पूछा---कितने दिन अटका रखिएगा शंकरदादा ?

शंकर दादा ने कहा---दो साल, दस साल और शायद चिरकाल तक।

अधीर कंठ से निरू ने कहा---यह मुझसे न होगा। फ़िक्र क्यों करते हैं, मेरे ऊपर कोई चार्ज तो नहीं है---और मुझसे कोई बात कबुलवा ले, ऐसा आदमी इस दुनिया में कोई पैदा नहीं हुआ।

शंकर दादा ने कहा---सो तो मैं जानता हूं कि कोई तुम्हारे पेट से कोई बात निकाल नहीं सकता। किन्तु किसी दिन अगर सुनूं कि तुमने विष खा लिया है! मैं तुम जैसी लड़की को छोड़ नहीं सकता---किसी तरह नहीं। तुम नहीं समझतीं, तुम्हारा मूल्य बहुत बड़ा है।

और भी दस-बारह दिन बीत गये। इसी बीच में कुछ दिनों के लिए उस घर से भी अड्डा उठाने की जरूरत हो पड़ी।

तब शंकर दादा ने निरू से कहा---सारी मुश्किल तुम्हारे ही बारे में है बहन। तुम किसी की स्त्री बनकर किसी के जनाने में घुस तो पड़ो। तभी निरापद रहोगी।

निरू ने गर्दन हिलाकर कहा---ना, मुझसे यह न होगा।

शंकर दादा ने कहा---क्यों ?

निरू ने कहा---ऐसा आदमी कौन है, जिसे स्वामी कहने में लाज न हो ?

शंकर दादा ने कहा---जरा इस घमंडी लड़की की बातें तो सुनो।

फिर शंकर दादा ने उसी की बात का समर्थन करते हुए कहा---यह तो सच है। लेकिन तुम किसी की सचमुच स्त्री तो बनने नहीं जा रही हो। स्त्री का स्वांग बनाना पड़ेगा, जैसे थिएटर वगैरह के खेल तमाशे में पार्ट किया जाता है।

खिलखिलाकर हंसती हुई निरुपमा ने कहा---यह कहिए। हां, यह

कर सकूंगी—खूब कर सकूंगी। कहिए तो इन्हीं मुन्नू दादा की स्त्री बनकर घूंघट निकाल कर बैठूं।—ठहरिए मुन्नू दादा, सुनिए, मेरी बात सुने जाइए।

"आ: निरू !" कहकर मैं उस समय तेजी के साथ बाहर निकला जा रहा था। निरू ने राह रोकी, मैं लेकिन कतराकर चला गया।

दिन भर बड़ी मेहनत करनी पड़ी। शाम के बाद लौटकर ही लेट गया। बेखबर सो रहा था। एकाएक कोई सिर पकड़ कर ज़ोर से हिलाने लगा।

मैंने पड़े-पड़े ही कहा—कौन है ?

उत्तर मिला—जोरू, आपकी जोरू जी—

पहले मैं समझ नहीं पाया, घूंघट निकाले थी न। बात भी फुसफुसा कर कह रही थी नवविवाहित लजीली वधू की तरह। अन्त को मैंने पहचान लिया। नींद आंखों में ऐसे जोर की छाई हुई थी कि आंखें खोल नहीं पा रहा था। खीझकर मैंने कहा—तो इतनी रातको क्यों दिक करने आई हो ?—नहीं निरू, तुम बहुत दिक करती हो। जोरू हो, चाहे जो हो—कल देखा जायगा। इस समय जाओ, परेशान न करो।

उसने कहा—शंकर दादा का हुकम हुआ है—अभी चलो।

मैंने कहा—सच ?

उसने कहा—शुभस्य शीघ्रम्। देर न करो, कल ही शायद सुनोगे, कालेपानी ले गये हैं। तब जोरू कहां पाओगे ? अंडमन के सागर में पुल बांधने के लिए फिर रामचन्द्र की तरह बन्दर खोजने पड़ेंगे।

मैंने कहा—खोजना न होगा, बन्दर तो यह सामने ही है। सोते हुए

आदमी पर तुम्हें करुणा भी नहीं, आधी रात को आकर नोचने-खसोटने लगीं।

रूठने के सुर में निरू न कहा--मुंह के ऊपर इस तरह कहने से जान पड़ता है, दुःख नहीं होता! सचमुच क्या मैं बन्दर-सी दिखाई देती हूं? बोलिए।

देख कर कहने के लिए तो आंखें खोलनी होती हैं। पर उपाय क्या है? इसके सिवा शंकर दादा का नाम ले रही है। आंखें खोल कर देखा, वह जाने के लिए तैयार खड़ी है। चटपट उठकर कुर्ता गले में डाला। आकाश में तारे चमक रहे थे। गैस की रोशनी धीमी पड़ रही थी। शंकर दादा थोड़ी दूर तक हमारे साथ जाकर लौटकर चले आये। हम दोनों जने चुपचाप चलने लगे।

यह मेरी अच्छी नौकरी हुई! निरू को घर के अन्दर रखकर अपने को उसके स्वामी के नाम से परिचित कर इस जगह रहता हूं। दूर कहीं जाने का शंकर दादा का हुक्म नहीं है। एक दिन शंकर दादा वहां आये। नाछोड़बंदा होकर मैंने उन्हें पकड़ा, कहा--आदमी को जेल की सजा होती है तो दो महीने, छः महीने, साल-दो साल, कुछ उसकी मुद्दत होती है। मेरा छुटकारा कब होगा--बतलाइए।

शंकर दादा ने कहा--अभी दिन ही कितने हुए?

मैंने नाराज़ होकर कहा--देखो न हिसाब करके। तीन महीने पूरे हो गये। यह टब के पौधे की रखवाली मुझसे न होगी--मैं स्पष्ट कहे देता हूं!

मेरा भाव देखकर शंकर दादा मंद हास्य के साथ बोले--अच्छा, और कुछ दिन रहो। देखूंगा और किसी को।

मैंने कहा—और कोई नहीं मिलेगा। मेरा जैसा गधा और कोई इस दुनिया में नहीं है।

जहां मैं रहता था, वह जगह एक क़स्बा जैसी थी--कुछ देहात और शहर सा। उस दिन शाम से ही आंधी और वर्षा शुरू हो गई थी। बहुत रात गये दरवाज़े की जंजीर झनाझना उठी। निरू पुकार रही थी। मामला क्या है? दरवाज़ा खोलकर देखा, उसके हाथ में हरीकेन लाल्टेन की रोशनी और हाथ में एक झबरी है। बोली--हमारे पिछवाड़े के बाग़ में बहुत से आम टूट-टूटकर गिरे हैं। चलो बीन लावें।

बेहद गुस्सा आया। मैंने कहा—हां—यही सब करता घूमूं। कल से तुम कमर बांधकर कच्चे आम की टिकिया बनाने में जुट जाओ! और कहो तो गोशाला बनाकर दो-चार गऊ पालने का बन्दोबस्त करूं!

उसका हंसता हुआ चेहरा एकदम सफ़ेद पड़ गया। हरीकेन लाल्टेन के क्षीण प्रकाश में भी यह मैंने स्पष्ट देख पाया। पैर के नाखून से फ़र्श पर लकीर बनाती हुई वह बोली—मैं क्या करूं, बतलाइए? मेरा क्या दोष है?

मैंने कहा—दोष किसी का नहीं है। चुपके से जाकर सो रहो। कटे घाव में नमक छिड़कने न आओ, इतनी सी दया करो। इस तरह रहने में तुम्हें आनन्द होता है, मगर मुझे रुलाई आती है।

हाथ की झबरी धप से ज़मीन पर फेंक कर निरू लौट पड़ी। बोली—आप चले जाइए, कल ही। समझे?

मैंने कहा--तुम्हारे कहने से मैं यहां नहीं आया हूं निरू, और तुम्हारे कहने से जा भी नहीं सकता। जिनके हुक्म की ज़रूरत है उनको मैंने बता दिया है। छुट्टी पाने पर एक मिनट की भी देर न करूंगा।

निरू ने कहा--तो मैं ही कल जाऊंगी। अब और एक दिन भी नहीं। शंकर दादा खड़े होकर कहें तो भी नहीं।

दरवाजे के सामने जाकर वह दम भर खड़ी रही। उसके बाद मुंह फेर कर बोली—आनन्द की बात कह रहे थे। खूब आनन्द देख रहे हैं। देखने को आंख भी है आपके ? मन की भूल से जरा हंस दी थी--माफ़ कीजिएगा।

धड़ाम से दरवाज़ा बन्द करके कीला अटका दिया।

मैं जाकर लेट रहा। किन्तु निरू की बातें बार-बार याद आ रही हैं। उसका विषाद से भरा चेहरा जैसे सामने देख रहा हूं। गृहस्थ के घर की भावप्रवण लड़की है। लिखी-पढ़ी थी। उसके बाद देश का काम करने के इरादे से सर्वस्व छोड़कर चली आई है। यह जगह, जहां उसका अपना कोई नहीं है, उसकी छाती पर भारी पत्थर की तरह बोझ बनी हुई है। दिन भर और दस बहू-बेटियों की तरह घर के काम करती है, तरह-तरह की मेरी फ़र्माइशें पूरी करने में चुपचाप लगी रहती है--परिश्रम करती है। सन्नाटे की रात में अभिनय की नक़ाब जरा उतार डालनी चाही थी। दौड़-दौड़कर आम बीनती, हंसती-बोलती, थोड़ा-सा अटांय-शटांय बकती। यह कौन ऐसा अपराध था जिसके लिए मैंने इतनी उल्टी-सीधी बातें सुना दीं। बेचारी मुंह लटकाकर चली गई।

मगर सो नहीं सका मैं। निरू की कोठरी के सामने आकर पुकारने लगा। कुछ जवाब न मिला--वह सनकी भी नहीं। यह मैं जानता था, बोलेगी नहीं। मैं झबरी उठाकर अकेला ही बाग में चला गया। सबेरे गुस्सा ठंडा पड़ जायगा, झबरी भर आम देखकर तब खुश हो जायगी।

उस समय तेज हवा के झोंके बन्द हो गए थ, बीच-बीच में लेकिन पानी के झोंके आ जाते थे। मेरी एक फुफेरी बहन थी। उसका नाम

जया था। उसी जया बहन की याद आ रही थी। छोटी उम्र में पाठशाला से भाग आकर उसके साथ दौड़-दौड़कर इसी तरह आम बीनता था। वे सब दिन कहां चले गए! आज मैं मानवेंद्र राय—दल के लड़के-लड़कियों का अति श्रद्धेय मुन्नू दादा इतनी रात को आम बीनता फिर रहा हूं, यह दृश्य कोई देख पावे तो कैसा होगा—क्या समझेगा, जरा अन्दाज करो तो!

सवेरे आंख खुलने में देर हो गई। निरू के सामन पड़ते ही उसने पूछा—रात को कहां थे आप?

मैंने कहा—क्यों, घर ही में तो था। अभी तो उठकर आया हूं।

उसने कहा—जी हां! वह रात के पिछले पहर किसी समय आकर आप सो रहे मैं एक दफ़ा उठकर गई थी। देखा, दरवाज़े के दोनों पट खुले पड़े हैं।

मैंने कहा—यह ठीक है। लेकिन अच्छा रहा जी—बड़े आराम से—याने स्प्रिंग के पलंग में सोता रहा—वह जैसे मुझको अपने पेट में समेटे ले रहा था—

निरू ने शान्त भाव से कहा—किस जगह?

चटपट झूठ बनाकर बोलने का अभ्यास हो गया है—क्योंकि इसकी हम लोगों को बड़ी जरूरत रहती है, खासकर खुफ़िया पुलीस को चकमा देने के लिए—किन्तु निरू के सामने झूठ बोलने में ज़बान अटक जाती है। मैंने कहा—था गली के मोड़वाले घर में। करूं क्या—कपड़े भीग गये थे बौछार से, इसीलिए उन लोगों से एक सूखी धोती मांगकर—

उसने पूछा—घर किस का है, यह पूछ रही हूं।

चिढ़कर मैंने कहा—किसका घर है, क्या हाल है, यह सब बरजबान नहीं कर आया। यह सब मैं न बता सकूंगा।

निरू ने कहा—मैं बता सकूंगी। कपड़ों का ट्रंक मेरी कोठरी में है न—इसी से चूल्हे में लकड़ी जलाकर आग बनाई आपने और भीगे कपड़े देह में ही बैठे-बैठे सुखाये हैं। मुझे बुलाकर सूखे कपड़े मांगने में क्या कुछ बेइज्जती होती ?

फिर कहा—सबेरे-सबेरे खाना-पीना करके यहां से रवाना होऊंगी। आप क्या मेरे साथ कलकत्ते तक चलेंगे ?

मैंने कहा—जाने-जाने को करती हो, मैंने कौन ऐसी बात कही है-ज़रा सुनूं तो। मन खराब होने पर आदमी न जाने कितना कुछ कह डालता है ! इसी बाबत शंकर दादा से एक की हज़ार लगाने ही तो जाओगी न ?

उसने कहा—शंकर दादा से मैं कुछ न कहूंगी। आप न चलेंगे तो अकेली ही चली जाऊंगी। मैं आपको तिल-तिल करके मारना नहीं चाहती।

मैंने कहा—सो तो है ही ! स्वाधीन हो गई हो। शंकर दादा से क्यों कहोगी ? लेकिन झगड़ा बाद को करना। मुझ से खड़े नहीं रहा जाता, सिर फटा जा रहा है। कुनैन की गोलियां अगर हों तो जल्दी से दो ठौर निकाल दो—बुखार आ सकता है।

लेकिन कुनैन से ज्वर का आना नहीं रुका। वही जो उस दिन बिछौना पकड़ा तो बहुत दिन बेहोश सा ही पड़ा रहा। बीमारी में आदमी इतना असहाय—इतना लाचार हो जाता है ! महीने भर के बाद एक दिन आसपास कहीं कोई न था, मैं खाट से उतर कर खड़ा हुआ। मेरा लक्ष्य दीवाल का वह हिस्सा था जहां पर पलस्तर टूटने से मनुष्य के मुख का आकार सा बन गया था। उसी स्थान को मैं हाथ से छूना चाहता था। मैंने सोचा—वहां तक जाकर मैं उसे छू सकूंगा—ठीक छू

सकूंगा। वहां तक जा सकूंगा—हां, चल तो पा रहा हूं। इतने ही में उधर की कोठरी में पैरों की आहट हुई। रोग की दशा का स्वर ज़ोरदार हो उठा।

मैंने ज़ोर से कहा—निरू, देखो—निरुपमा—

निरू ने खिड़की में मुंह बढ़ाकर देखा।

चिल्लाकर बोली—यह क्या कर रहे हैं आप !

एकाएक सिर में चक्कर आ गया। मैं धड़ाम से गिर गया। निरुपमा दौड़कर आई। हमारे दल का एक छोकरा डाक्टरी पास था। उसे लाकर यहां रखा गया था मेरी देख-रेख और दवा दारू के लिए। वह आया। कुछ देर में मेरी हालत ठीक हो गई। निरू उस समय भी वहां थी। आजकल मुझ पर उसका बड़ा कड़ा शासन है। मैं बार-बार विनती करके कहता था—मेरी अच्छी निरू, मुझे एक आम खाने के लिए दो। कच्चे आम बीनने जाने से ही मेरा यह हाल हुआ है। अब आम पक गये हैं। मीठा देख कर छांटकर एक दे दो। कुछ न होगा।

निरू झनकार उठी—और नहीं क्या ! डाक्टर ने क्या कहा है, जानते हैं ?

मैंने कहा—कुछ नहीं कहा। सब तुम्हारी बनाई हुई बातें हैं—मुझे खाने न देने का तुम्हारा यह षड्यंत्र है।

निरू बहस नहीं करती। कहती है—अच्छा यही सही।

निर्विकार मुंह से वह चली गई। साथ ही साथ झन से मेरी कोठरी के द्वार की जंजीर बाहर से चढ़ गई।

मैंने कहा—तुमने दरवाज़ा क्यों बाहर से बन्द कर लिया ?

बाहर से निरू ने कहा—इस घर के इतने आम तो चटपट हटाये नहीं जा सकते। आपको बन्द रखना ही सीधा उपाय है।

मैंने बिगड़ कर कहा—कौन तुम से मुरब्बी बनन के लिए कहता है? तुम कौन हो? मेरी अपनी कोई नहीं हो—

निरू ने जवाब दिया—मैं आपकी कोई हूं यह क्या मैंने किसी दिन आपसे कहा है?

मैंने कहा—तुम मेरी दुश्मन हो। मुझे मार डालने का तुम्हारा मतलब है।

निरू ने कहा—अच्छा यही सही। ठंडे होकर सोने की कोशिश करो। मैं बार्ली बना लाऊं।

इस बकझक और झगड़े से थककर आंखें मंदे पड़ा हुआ था। शंकर दादा की आवाज़ इतने में सुन पड़ी। वह आज आये हैं—उस तरफ़ बातचीत हो रही थी। शंकर दादा कह रहे थे—ढाके के मामले में अब देर नहीं की जा सकती बहन। मुन्नू ने कल पथ्य पाया है, अब क्या है! दो लड़कों को मैं यहां भेज दूंगा। वे मुन्नू की देख-भाल करेंगे।

निरू ने कहा—ना, ना—और कुछ दिन मुझे छुट्टी दीजिए—यही आठ दस दिन। अन्न खाकर कैसे रहते हैं, यह देखे बिना कैसे जाऊं?

शंकर दादा ने कहा—यह तो मुश्किल है। इन कई दिनों के लिए ढाके और एक आदमी को भेजूंगा?

निरू ने कहा—यही कीजिए दादा। उसके बाद में वहां पहुंच जाऊंगी, सारा बोझ अपने सिर पर ले लूंगी।

शंकर दादा ने कहा—लेकिन तुम्हे सावधान किये देता हूं निरू, सावधान! तुम्हारे बड़े दाम हैं। तुमको मैं न छोड़ सकूंगा—मुन्नू के लिए भी नहीं।

मेरा सारा क्रोध रफूचक्कर हो गया। मन में आनन्द का तूफ़ान सा उठ खड़ा हुआ। सचमुच बीमारी में आदमी ऐसा ही दुर्बल हो जाता

है ! आधे सोते में सपना देखता हूं। जैसे बहुत दूर से एक मधुर गाने की तान तैरती चली आ रही है। विश्वास करो भाई, मैं बढ़ाकर नहीं कहता, उस दिन न जाने क्या सोचने लगा। जैसे पृथ्वी पर से दुःख-दैन्य सब चला गया है, मनुष्य अत्यन्त शान्ति में है। साम्राज्य के लिए मारकाट, वह जैसे अतीत युग की विभीषिका है।

दरवाजे की जंजीर खोलकर शंकर दादा मुझे देखने भीतर आए। हड़बड़ाकर मैं उठ बैठा।

मैंने कहा—जुल्म तो देखिए। एकदम क़ैद कर रखा है।

मामूली दो-एक बातें पूछ कर शंकर दादा चले गए। बहुत ही व्यस्त थे। दो कौर खाकर उसी दम चल दिए। बार्ली का प्याला हाथ में लिए निरुपमा आई। मैंने कहा—निरू, हमने पृथ्वी को अच्छी तरह भोग करना चाहा है।

निरू ने कहा—अच्छा तो है। वही कीजिएगा।

उसके पास आते ही मैंने चट से उसका हाथ पकड़ लिया। कहा—देखो, हम कोई नागा-संन्यासी नहीं हैं। निवृत्ति की साधना हम लोगों के लिए नहीं है।

मेरी आंखों में न जाने क्या था। निरुपमा ने क्षण भर उधर ताक कर हंसते हुए साथ दिया—हूं—हूं—

मैंने कहा—हम दोनों का ब्याह हो जाय।

निरू ने कहा—अच्छा।

मैंने कहा—तो फिर शंकर दादा के जाने के पहले उनसे कहो।

"अच्छा" कहकर निरुपमा चली गई। थोड़ी ही देर में लौटी। उसके हाथ में आईस-बैग (बर्फ़ का थैला) था।

निरू ने कहा—शंकर दादा आ रहे हैं। डाक्टर को खोजा, वह नहीं हैं।

मैंने चकित होकर कहा—डाक्टर ?

निरू ने कहा—बस लेट जाइये जरा, आपके सिर पर आईसबैग रख दूं।

मैंने कहा—क्यों ?

उसने कहा—आपका माथा ठंडा होगा। माथा गरम हुए बिना क्या कोई अंटशंट बकता है ?

शंकर दादा के आते ही निरुपमा ने कहा—इस गाड़ी से जाना किस तरह होगा ? दूसरी गाड़ी से जाऊंगी। जरा तैयारी करनी होगी। 'चलो' कहते ही भला कहीं स्त्री जाति का कहीं जाना हो पाता है ?

शंकर दादा ने कहा—तो तुम जा रही हो ?

निरू ने कहा—कल ही ढाके चली जाऊं। उसके बाद और जहां जाने को आप कहें।

शंकर दादा के जाने पर मैंने कातर कंठ से कहा—और कुछ दिन ठहर जाओ निरू, मेरा रोग अभी दूर नहीं हुआ।

निरू ने कहा—मेरे रहने से रोग बढ़ता ही जायगा।

मैंने कहा—अगर मर जाऊं ?

निरू ने कहा—बड़ा अफ़सोस और दुःख होगा। आहा, गाली देने और झगड़ा करने का ऐसा आदमी भी चला गया।

मैंने कहा—कल मैं अन्न का पथ्य करूंगा। क्या एक दिन भी नहीं ठहर सकतीं ?

निरू ने कहा—ना।

जाने के पहले निरू मुझे प्रणाम करने के लिए आई। मैंने मुंह फेर लिया। उसने मेरे पैर पर सिर रखा। मैंने पैर हटा लिया। पैर की ओर

देखा, उस पर आंसू का दाग था। निरुपमा रोई है। तो यह औरत भी रोना जानती है।

घोड़ागाड़ी के जाने की आवाज सुन पड़ी। गाड़ी के भीतर निरू और शंकर दादा आमने-सामने बैठे जा रहे थे। इमली के पेड़ की आड़ में गाड़ी अदृश्य हो गई। अब उसकी घरघराहट भी नहीं सुन पड़ती।

*   *   *   *

सोमनाथ और माया

जगत् दत्त की बातों पर---उसके चरित्र पर---एक महाकाव्य लिखा जा सकता है। लेकिन लिखता कौन है? लिखने का जब समय होगा, उस दिन अतीतके साक्षी हम जो कुछ आदमी हैं, उनमें क्या लिखने की शक्ति रह जायगी? तब तक भला हम जीते भी रहेंगे? अभी याद धुंधली---अस्पष्ट होती जा रही है।

उस दिन दोपहर को कालीसिंह की महाभारत (बंगला भाषा में) आले से उतारकर पढ़ने बैठा था। मेरे पिताजी इतना लिखते और पढ़ते थे, पर उसमें भी समय निकालकर वह नित्य इस पुस्तक का पाठ करते थ। पिताजी का स्वर्गवास होने के बाद से यह पुस्तक ताक में उठाकर रख दी थी। उसके पन्ने उलटते-उलटते उसके भीतर मुझे पुराने अखबार की कुछ कतरनें मिलीं। वे एक आलपिन में नत्थी थीं और इधर उधर उनमें लाल निशान लगे थे। याद आ गया, मैंने ही कतरनें काट-कर निशान लगाकर उसमें रख दी थीं। किसी विस्मृत युग की बात थी। अब न वे सब आदमी थे, न वह धरती थी। कागज एकदम फीका

और बदरंग हो गया था। पढ़ना ही मुश्किल था। एक कतरन में छपा था—

"जज साहब इजलास में आकर बैठे। राय क्या देंगे, यह पहले ही अनुमान से जान लिया गया था। किन्तु असामी जगत्लाल दत्त कठघरे में कुर्सी के ऊपर इस तरह बैठा है जैसे उससे इस मुकदमे का कोई संबंध ही नहीं है। जान पड़ता था, जैसे उसे आलस्य से बीच-बीच में नींद आ रही है।

"बहुत सी बातों के आडंबर के बाद हुक्म सुनाया गया—फांसी। जगत् ने हंसते हुए मुख से जज साहब को नमस्कार किया।

"जज ने कहा—आप अपील कर सकते हैं।

"कोई जरूरत नहीं, यह कहकर जगत् जोर से हंसने लगा।"

मल्लिका (मेरी पत्नी) आ गई थी। वह भी मेरे कंधे पर झुककर इसे पढ़ रही थी। वह कह उठी—धन्य है!

मैंने उसके मुंह की ओर ताका। इस तरह की बात सुनने पर साधारणतः मैं हंस उठकर उसे अप्रतिभ कर देता हूं। किन्तु आज ऐसा न कर सका। याद आ गया, वहां अदालत में उस दिन मैं और शंकर दादा भी एक कोने में खड़े थे। जगत् का हंसना देखकर वह पत्थर के बने आदमी तक अस्फुट शब्द में मल्लिका की तरह इसी तरह की कोई बात कह उठे थे।

मल्लिका बोली—ओह, शंकर दादा के दल का लड़का था यह!

मैं जगत् का प्रसंग टाल देना चाहता था। मजबूरी के कारण संक्षेप में कही गई इस कहानी में उसे नहीं लाया। मैंने कहा—इससे भी बड़ा उस लड़के का परिचय है। जगत् के पिता हैं सोमनाथ दत्त।

विस्मय से आंखें फाड़कर मल्लिका ने कहा— कहते क्या हो?

फिर हाथ जोड़कर उसने सोमनाथ दत्त के उद्देश्य से नमस्कार किया।

मैंने कहा——तुमने क्या उनको देखा है मल्लिका?

मल्लिका ने कहा——ना। मगर इससे क्या होता है? भगवान् को भी तो किसी ने नहीं देखा।

मैंने कहा——भगवान् को इस मामले में क्यों खींचती हो?——उस जमाने में लोग उन लोगों के बारे में क्या कहते थे, जानती हो?

मल्लिका ने पूछा——क्या कहते थे?

मैंने कहा——कहते थे——ये सब भयंकर शेर हैं। हंसते-हंसते इस तरह प्राणों के साथ जो खेल सकते हैं, वे कभी मनुष्य नहीं हैं।

मल्लिका ने कहा——हंसते-हंसते जिन लोगों ने एक दिन इतने बड़े देश का सर्वनाश किया था, वे भी मनुष्य नहीं थे। भयानक पाप का प्रायश्चित्त भयंकर ही हुआ करता है।

बरामदे में जाकर बैठा हूं। दर्वाजे के आगे के सहन के उस पार रास्ता है; उसके उधर फिर मैदान है। कांस के सफ़ेद फूलों से सारा मैदान छा गया है। तेज धूप में एकाएक आंखें चौंधिया जाती हैं। जान पड़ता है, सामने अपार दुस्तर बालू का समुद्र है।

मल्लिका आकर बग़ल में बैठ गई। बोली——तुमने सोमनाथ को देखा है?

मैंने कहा——अनेक बार। पहले पहल देखा था जगत् के ब्याह के दिन। बैठकखाने में सो रहा था, जगत् वासरघर * से वहां भाग आया।

मल्लिका नाछोड़बंदा है। उसके ताकीद करने से मुझे स्मृति के

---

* बंगालियों में प्रथा है कि ब्याह की रात को ही वर-वधू रात को एकत्र रहते हैं। उसे ही वासरघर की रस्म कहते हैं। जैसे उत्तर प्रदेश में "सोहागरात" होती है।——अनुवादक

सागर को मथना पड़ा--पुरानी बातें याद करनी पड़ीं। खुद तो मैं बहुत ही थोड़ा जानता हूं। माया के मुंह से जैसा सुना है, वही अपने शब्दों में कहता हूं। माया मेरी ममेरी बहन अर्थात् मामा की लड़की है। खालिसपुर से लगभग तीन मील पर उन लोगों का घर है। कालिज में प्रवेश करके शुरू-शुरू में जगत् के साथ होस्टल के एक कमरे में पास ही पास रहता था। एक बार डोंगी डूब गई, तैरकर उस पार पहुंचकर जगत् की प्रतीक्षा में सबेरे तक चांदावाटा के झाड़ के पास बैठकर जाड़े से कांपता रहा। जगत् पानी के तोड़ के कारण दो मोड़ आगे जाकर किनारे पर चढ़ सका था। इसी से मोटे तौर पर समझ सकती हो कि हम दोनों में कैसी घनिष्ठ मित्रता थी। हम लोगों के साथ जगत् मामा के घर अनेक बार गया-आया था। और इसी के लगभग दो वर्ष पहले से सोमनाथ बाबू फ़रार थे। इसलिए जगत् अपना अभिभावक आप ही था। सब जोड़ मिल गया। मैंने ही यह सम्बन्ध जुटा दिया।

मल्लिका ने मुंह बनाकर कहा--तुम तो केवल उपलक्ष मात्र थे। मामला दोनों ने आप ही तय कर लिया था। यह प्रेम का व्याह था--मैं समझ गई।

मैंने कहा--खैर वह चाहे जो हो, शुभ कर्म (व्याह) तो निर्विघ्न हो गया। देहात के व्याह में साधारणतः जितनी रात हुआ करती है, उसके पहले ही व्याह का सब हंगामा समाप्त हो चुका था। इसका कारण यह था कि माया के बाप कलकत्ते में एक जमींदार के यहां नौकर थे। वहीं से वह एक रसोइया ब्राह्मण और काम करने के लिए कुछ आदमी ले आये थे--गांव के आदमियों पर कुछ न छोड़ा था। माघ का महीना और महीने के आखिरी दिन थे। घोर जाड़ा पड़ रहा था। घर भर के सब लोग लिहाफ़ के नीचे घुसे पड़े थे। यह कोई नहीं समझ सकता था कि यह व्याहकाज का घर है।

माया को नींद नहीं आ रही थी। अगर तुम यह पूछो कि मल्लिका क्यों नहीं आ रही थी तो हम लोगों के ब्याह के दिन की याद कर लो। देशसेवक होने के कारण सभी ने धूमधाम के साथ वेदी के ऊपर बिठाया, लेकिन सोचकर देखो, घरौवा मामलों में हम सभी एक से हैं। तुम उससे खुस कर रही थीं। बोलीं---सेंट पड़ जाने से आंखों में जलन हो रही है। मैंने तब---

मल्लिका ने चट हाथ से मेरा मुंह बंद करके इधर-उधर ताका। बोली---हो रही है एक भले आदमी की बात। उसके बीच यह सब खाक-पत्थर क्यों घुसेड़ रहे हो, बताओ?

मैंने कहना शुरू किया---इसके बाद माया को ज़रा नींद आने लगी। लेकिन किसी के कपड़ा खींचने से वह चौंक उठी। देखा, जगत् चुपके-चुपके गठबंधन की गांठ खोल रहा है। दर्वाज़ा खोलकर जगत् सावधानी के साथ चोर की तरह कोठरी के बाहर निकल गया। माया को बड़ा डर लगा। वासरघर से इस तरह निकल जाना अस्वाभाविक और अत्यन्त असगुन की बात है। माया की आंखों से आंसू निकलने ही वाले थे---और क्या! जगत् गया सो गया, लौटने का नाम ही नहीं। बहुत देर बाद पैरों की आहट पाकर माया ने आंखें बंद कर लीं, ठीक जैसे बेहोश सो रही हो।

आले में रेंड़ी का तेल का दिया जल रहा था। माया आंखें ज़रा खोलकर देखने लगी। जगत् सोया नहीं, ज़रा इधर-उधर करके, मन से दुबधा जबर्दस्ती दूर करके उसने माया को हिलाया और कहा---सुनो, सुनो---ज़रा उठो तो---

कपट-निद्रा से जागने का ढोंग करके माया ने कहा---क्या है?

जगत् ने कहा—कुछ खाने का सामान ला दे सकती हो रानी ?

ब्याह की रात को यही उनकी पहली बात हुई।

माया ने कहा—मैं कहां पाऊंगी ? भंडारे की कोठरियों में ताला पड़ा है। फिर लोग देख पावेंगे तो क्या कहेंगे ?

जगत् के मुंह की ओर देखकर उसे हंसी आ गई। बोली—खाना पाने की चेष्टा में रसोईघर में गये थे न ? जैसे शर्मीले हो, उसका मजा पाओ। थाल भर के इतना खाना परोसा गया था। जान पड़ता है, कुछ खाया नहीं।

जगत् ने कहा—हंसी नहीं माया, सचमुच बड़ी जरूरत है। भंडारे से हो या कहीं से हो—तुम न ला सको, मुझे खाली वह जगह दिखा दो—आओ चलो।

उसका भाव देखकर उद्विग्न कंठ से माया ने कहा—हुआ क्या ?

जगत् ने कहा—पिताजी आये हैं।

माया ने कहा—कहां हैं वह ?

जगत् ने कहा—हम लोगों को आशीर्वाद देने आये हैं। कोई जानने न पावे—खबरदार !

माया ने कहा—सो मैं जानती हूं। लेकिन बाहर कहां तुम इस जाड़े में उन्हें छोड़ आये हो ? उन्हें कष्ट हो रहा होगा।

मुरझाई हंसी हंसकर जगत् ने कहा—लिहाफ़-गलीचा शाल-दुशाला लिये पुलिस तो दिन-रात ही उनके पीछे घूम रही है। उन्हें पकड़ नहीं पाती, इसी से इतना कष्ट है !

अन्धकार में शरीफ़े के पेड़ के नीचे सोमनाथ खड़े थे। सन्नाटे की रात थी, कलेजे को हिला देनेवाली हवा चल रही थी। आकाश के तारे भी जैसे सो गये। अयत्न और अत्याचार के कारण अवस्था से अधिक

बूढ़े दिखाई देते थे सोमनाथ। शरीर पर केवल एक रुई की मिर्जई पहने और एक सूती चादर ओढ़े थे।

माया ने पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। बोली—आइए बापू।

सोमनाथ चौंक उठे। इस तरह माया चली आवेगी, इसकी उन्होंने प्रत्याशा नहीं की थी। बोले अभ्यर्थना करने आई हो—नादान लड़की, और सभी को बता दिया है क्या?

माया ने कहा—किसी को नहीं बताया बापू। इतनी समझ मुझ में है। घर के भीतर चले आइये। किसी को कानोंकान खबर न होगी।

सोमनाथ ने कहा—जानती हो, मुझे घर में बुलाने से विपत्ति का खतरा है?

माया ने कहा—बहलाने से न मानूंगी। अंधेरे में आपको अच्छी तरह देख नहीं पाई। प्रकाश में ले जाकर दर्शन करूंगी। जी भरकर चरणों की रज माथे से लगाऊंगी।

हाथ पकड़कर वह सोमनाथ को भीतर ले गई। चुपके-चुपके जगत् से कहा—सचमुच बापू को खिलाने-पिलाने के लिए क्या किया जाय, बताओ।

जगत् ने कहा—तुम्हारा घरबार है। तुम अगर न कुछ कर सको तो मैं क्या कर सकता हूं? मैं एक तो नया आदमी हूं—उस पर जमाई—

माया ने कहा—मैं भी तो चार-पांच दिन से कुछ नहीं जानती; लगन लगी होने के कारण एकान्त में पड़ी रहती हूं। कहां क्या रखा गया है, इसकी खबर नहीं। इस समय कहां ढूँढती फिरूं? लोगों के जाग पड़ने का अंदेशा भी है।

जरा सोचकर माया ने कहा— एक काम कर सकते हो तुम? मुन्नू

दादा को जगाकर ले आओ। वह सब जानते हैं--वह कुछ उपाय कर सकेंगे।

मल्लिका ने कहा--तभी तुम्हारी पुकार हुई।

मैंने कहा--पुकार क्या कहती हो। बड़े आराम की नींद सो रहा था। जगत् आकर धमाधम पीठ पर घूसे जमाने लगा। बोला--अरे, अभागे, पिताजी को देखना हो तो जल्दी चल।

मल्लिका ने पूछा--उसके बाद?

भंडार जग्गू काका की हिफाज़त में था। मंडप में चौकी के ऊपर पड़े वह नाक बजा रहे थे। जनेऊ में चाभियों का गुच्छा बंधा था, सफ़ाई के साथ वह खोल लिया गया। मिठाई प्रायः समाप्त हो गई थी। तीन-चार हांडियों के मुंह पर कपड़ा बंधा था और वे समधियाने भेजने के लिए रखी थीं। उन्हीं में से कुछ खाने को निकाल यत्न के साथ ससुर के सामने रकाबी सजाकर माया ने रख दी।

बातों बातों में मालूम हुआ कि तीन दिन खजूर के रस और पोखर के पानी के सिवा और कुछ सोमनाथ को नसीब नहीं हुआ। बड़ी देर तक तरह-तरह की बातें होती रहीं। नहर में ज्वार आया। मछुओं का नाव छोड़ने का उद्योग हो रहा था। उसी का शब्द सुनने पर सोमनाथ उठ खड़े हुए।

माया ने कहा--ओह, कैसी हड्डियों तक हिला देनेवाली ठंडी हवा चल रही है। जैसे आंधी चल रही है।

सोमनाथ ने कहा--यह क्या हवा है--इससे भी बड़ी कितनी आंधी और तूफ़ान इस सिर के ऊपर गुज़र गये हैं--जानती हो?

माया ने कहा--लेकिन क्यों इतना कष्ट सहते हैं, यह पूछती हूं।

धीरे से हंसकर सोमनाथ ने कहा--मेरी तुम सब मायाविनी (मोह

लेने वाली) लड़कियों के शरीर में एक झपेटा भी कभी न लगे, इसीलिए यह आंधी, तूफ़ान और कष्ट सहता हूं बेटी।

मेरी तरफ ताककर माया ने कहा—बाहर कैसा अन्धकार है, देख रहे हो मुन्नू दादा?

सोमनाथ ने कहा—यही तो अच्छा है बेटी। अंधेरे में छिपता हुआ मज़े में चला जाऊंगा—कोई देख न पावेगा।

वह चले गए। उसके बाद माया को न जाने क्या हुआ कि फिर सोने नहीं गई। ब्याह की लड़की खुली खिड़की के पास बैठी रही। मैं और जगत्, दोनों खाट के ऊपर बैठे थे। हम लोगों को बात करने की कोई बात नहीं सूझ रही थी। दम भर बाद मैं बाहर चला आया।

दूसरे दिन माया की मुसीबत को ज़रा समझ कर देखो मल्लिका। इन सब उलझनों में बेचारी सारी रात जागती रही—नींद ही नहीं आई। उस पर मच्छड़ों का उत्पात। काट-काट कर मुंह लाल कर दिया था। बेचारी जहां बैठती थी, वहीं ऊंघने लगती थी—आंखें बन्द हो हो जाती थीं। माया की मा अर्थात् मेरी मौसी होठ दबा कर हंसी थीं, यह मैंने लक्ष्य किया था। लेकिन असली हाल तो किसी के आगे खोल कर कहा नहीं जा सकता था।

लेकिन मल्लिका मेरी ये सब बातें सुन नहीं रही थी। उसने अखबार की एक और कतरन लेकर पढ़ना शुरू कर दिया था—

"कल जगत्लाल दत्त को फांसी हो गई। मालूम हुआ कि फांसी का हुक्म होने के बाद भी उसके शरीर का वजन बढ़ गया था। फांसी के पहले की रात को भी वह बेखबर सोया था। सवेरे जेल का कर्मचारी उसे पुकारने गया तो देखा, वह उस समय भी सो रहा था। बहुत पुकारने पर वह लज्जित स्वर में बोला—जान पड़ता है, समय हो गया!

मेरी थोड़ी-सी गीता पढ़ लेने की इच्छा थी, लेकिन वह अब न हो सकेगा। अच्छा चलो।—

"चटपट उसने गले में बनयाइन डाल ली। चश्मा पोंछ कर उसने आंखों में लगाया। उसके बाद हंसता हुआ चल दिया, जैसे दावत खाने जा रहा हो!

"तीसरे पहर जेल के फाटक पर भारी भीड़ जमा हो गई। जगत्लाल के दूर के नाते के एक चाचा ने अधिकारियों से उसकी लाश प्राप्त कर ली। जलूस के साथ लाश मसान ले जाई गई। चिता की भस्म के लिए लोगों में छीना-झपटी मच गई। इस रात को बहुत से घरों में चूल्हा नहीं जलाया गया—लोगों ने निराहार व्रत किया।

"जगत्लाल के वृद्ध पिता और स्त्री इस समय काशी में हैं। अधिकारियों ने उनको खबर दी थी। फिर भी वे कलकत्ते नहीं आये।"

मल्लिका ने इस पर टिप्पणी की—यह सब फ़िज़ूल की बात है। उन्हें क्या पड़ी है जो खबर देते।

मैंने कहा—मैंने खुद भी माया के नाम तार भेजा था मल्लिका। सब खतम हो गया, कोई नहीं आया। उसके बाद मुझे माया की एक चिट्ठी मिली। उसने विशेषकर के मुझे आने के लिए लिखा था। जाकर देखा, वहां एक और आश्चर्य।

मल्लिका ने पूछा—वह क्या?

मैंने कहा—माया की मांग में सेन्दुर, शरीर पर साड़ी रंगीन, हाथों में सोने की चूड़ियां चमक रही थीं।

मल्लिका ने विस्मित होकर कहा—कहते क्या हो?

मैंने कहा—सच कहता हूं।

अस्फुट स्वर में मल्लिका ने कहा—बेहया!

मैंने कहा—कौन बेहया है? माया?

मल्लिका ने क्रोध के साथ कहा—ऐसा स्वामी—उसे एक बार—अन्तिम बार देखने तक नहीं गई। इसके सिवा तुम्हारे सामने इस तरह सजबज कर आने में उसे थोड़ी लज्जा आनी चाहिए थी।

केवल मल्लिका ही नहीं, तुम सभी ठीक यही बात कहोगी। क्या कहती हो तुम? अच्छा पूरी बात तो सुन लो।

बंगालीटोला (काशी) में माया रहती थी। गली दर गली उसके भीतर गली। तांगेवाला भी लगभग तीन घंटे तक खोजता रहा, तब जाकर कहीं घर का पता लगा। उस समय लगभग नव बजे का वक़्त होगा। मुझे देख कर सोमनाथ तो अवाक् हो गये—हैरत में आ गये। मैं भी उनको देख कर पहचान नहीं सका। उनका लोहे का सा मज़बूत शरीर था, अब सूख कर बांस की कमची-सा हो गया था। तमाखू पी रहे थे और खो-खो करके ज़ोर-ज़ोर खांसते जाते थे।

मल्लिका ने कहा—क्यों न हो। यही एकमात्र लड़का था।

मैंने कहा—माया ने सोमनाथ को यह नहीं बताया था कि उसने मुझे आने के लिए चिट्ठी लिखी है।

मैंने कहा—आप बहुत बीमार हैं काकाजी?

सोमनाथ ने कहा—जान पड़ता है, बहू ने यही बात तुमको लिख भेजी थी! बूढ़े लड़के की मा* है कि नहीं, थोड़े ही में घबरा जाती है।

मैंने कहा—लेकिन वह देख नहीं पड़ती।

सोमनाथ ने कहा—सिंहा बाबू की लड़की को सिलाई सिखाने गई है। वहां से आ कर रसोई बनावेगी।

---

*बंगालियों में बहू और बेटी को मा कहने का प्रचलन है।
—अनुवादक

फिर आवाज़ धीमी करके कहने लगे--अच्छा ही हुआ भैया, इसी बीच में मैं तुम से दो बातें कर लूं। मैंने बहू-मा को कुछ नहीं जानने दिया--उसे कुछ खबर नहीं है। जान पावेगी तो जान दे देगी। वह जानती है कि जगत् को केवल तीन साल की सजा हुई है। तुमने तार भेजा था, मैंने वह उसे नहीं दिया--ग़ायब कर दिया।

मल्लिका को स्वस्ति मिली। बोली--यह कहो! नहीं तो जान-सुनकर ऐसी हालत में कहीं वह साज-सिंगार कर सकती थी?

क्षण भर चुप रह कर सोमनाथ कह उठे--उसके बाद?--फांसी हो गई, सो तो जानता हूं। वह सब बातें ज़रा मुझे सुनाओ। अच्छी तरह एक सांस भी मुंह से निकालने का साहस नहीं होता भैया, कहीं माया जान न ले। बड़ी चालाक है बहू! सिंहा बाबू की लड़की के साथ गई है--इसी बीच में सब हाल कह तो डालो।

मेरी ओर एकटक ताकने लगे। लेकिर मेरे मुंह से बोल नहीं निकल पा रहा था, मैं दूसरी ओर मुंह फेरे हुआ था।

सोमनाथ ने कहा--रोते हो मुन्नू? छि:! अच्छा तो सुनो। मेरे बड़े भाई के दो लड़के थे--अमल और कमल। बेकार दशा में तीन साल मारे-मारे फिर कर अन्त में अमल को तपेदिक़ हो गया। अब नीम-तल्ला के घाट में वह शान्ति पा गया है। और कमल भी जैसे मर ही गया है। उसने लिखा-पढ़ा था, लेकिन नौकरी कहीं न मिली। गांजे के दम लगाता हुआ कहीं जी रहा होगा, जो कि मरने ही में शामिल है। मेरा जगत् तो इनसे अच्छा ही गया।

उनके पैरों की धूल माथे से लगा कर मैंने कहा--इस नरम मिट्टी के देश में आप के जगत् जैसा लड़का पैदा कैसे हुआ, यही मैं सोचता हूं काकाजी!

इसी समय सोमनाथ ऐसे इशारा करने लगे जैसे आनन्द संभाले नहीं संभलता—हो-हो करके जोर से हंस उठे। सोमनाथ के सम्बन्ध में अनेक असम्भव क़िस्से तुम लोगों ने सुने होंगे; मैंने अपनी आंखों से यही एक देखा।

माया लौट कर आ गई। सोमनाथ कहने लगे—मैं कौन ऐसा बीमार हूं बहू जो मुन्नू को इतनी दूर खींच बुलाया? अवश्य यह एक सुविधा हुई कि जगत् की सब खबर उसके अपने मुंह से सुनी जायगी। वही सब बात तो अभी शुरू हुई थी।

माया का मुंह दम भर में सफ़ेद पड़ गया। बोली—यह क्या बात है? राह के थके-मांदे आये हैं, वे सब बातें अभी रहने दीजिए, फिर होंगी।

मैंने कहा—जगत् शान्ति से है। चिन्ता की कोई बात नहीं है।

सोमनाथ ने कह दिया—और सिर्फ़ तीन साल की क़ैद हुई है, यह भी तो सुना दो।

रटे हुए की तरह मैंने कहा—जज का फ़ैसला निकला है—तीन साल की जेल।

फिर सोमनाथ हंस उठे। बोले—समझीं बहू, सिर्फ़ तीन साल। तीन साल तो देखते-देखते कट जायंगे।

माया भी हंसने लगी। बोली—सो तो ठीक है। तीन साल में दिन ही कितने होते हैं। आप तो इस तरह कितने ही दिन अंडमन में रहे हैं। तब तो देखिए बापू, मैं तो शुरू से ही कह रही हूं कि इस मामले को लेकर जो इतनी हलचल हुई—

सोमनाथ बीच ही में कह उठे—सो वही 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाली कहावत हुई।

माया ने कहा——सो तो है ही। एक ही दल के ये लोग हैं।

इसके बाद मेरी ओर मुंह करके कुछ-कुछ आदेश के स्वर में बोली——मुक़दमे का हाल फिर कहना दादा। इतनी दूर से आये हो, पहले नल के पास चलो, देह पर कम से कम एक इंच धूल जमी है।

मैंने कहा——धूल कहां है? मैं क्या अभी आया हूं? हाथ-पैर धोकर बैठा हूं।

माया नाराज़ हो उठी। तुम बड़ी बहस करते हो मुन्नू दादा। धूल नहीं है तो क्या मैं झूठ बोलती हूं? सिर के बालों तक गर्दा जमी हुई है। आओ——

नल सामने ही है, लेकिन माया मुझे बरामदे से घुमाकर कमरे में ले गई।

मैंने कहा——तुम्हारे ससुर देखता हूं, बिल्कुल बूढ़े और अपाहिज हो गये हैं। जान पड़ता है, चल-फिर भी नहीं सकते?

माया ने कहा——यह अच्छा ही है।

मैंने पूछा——इसके माने?

माया ने कहा——ऐसा न होता तो मैं इन्हें बचा न पाती।

इसके बाद माया ने और बात छेड़ दी। बोली——किधर से, कैसे आये मुन्नू दादा? उड़कर आये क्या?

मैंने कहा——मजे से तांगे पर चढ़ कर आया हूं। तुम सिंहा बाबू के घर न गई होतीं तो देख पातीं। एक मील दूर से भी तांगे की खड़खड़ाहट सुन पातीं।

माया ने कहा——तुम्हारी चिट्ठी मिली थी कि तुम आ रहे हो। सिंहा बाबू के घर जाने की मुझे क्या पड़ी थी। बापू से ज़रूर मैंने यही कह दिया था। सिंहा बाबू की लड़की को साथ लेकर उनकी मोटर लेकर

कंटून्मेंट स्टेशन गई थी और तुम्हारी तलाश कर रही थी, पर तुम देख ही नहीं पड़े !

मैंने कहा——मैं तो काशी स्टेशन पर ही उतर कर चला आया हूं।

माया ने कहा——अन्त को मैंने भी यही सोचा था। लेकिन बड़े समझदार हो दादा।

मैंने कहा——क्यों ?

माया ने कहा——तुम को पहले ही समझा देने और सावधान करने के लिए ही तो मैं दौड़ कर स्टेशन गई थी। तुम दोनों को आमने-सामने बैठे बात करते देख कर मैं तो एकदम डर गई थी कि तुमने कहीं सच्ची बात न कह डाली हो। लेकिन तुमने अन्दाज़ से सब समझ लिया।

माया की आवाज भारी पड़ गई। कहने लगी——मैं एक भी अख़बार घर में नहीं आने देती मुन्नू दादा। यह गहने और साड़ी का बोझ लादे फिरती हूं। कलेजे के भीतर धू-धू करके आग जल रही है, तो भी हंसते हुए झूठ बोलती जाती हूं। बापू ने जीवन भर कितना कष्ट उठाया है, कितनी यातना सही है, जानते तो हो ! जो चला गया, वह तो अब लौटने का नहीं। किन्तु यह ख़बर सुन कर बापू कटे कबूतर की तरह तड़प कर मर जायंगे।

मैं रसोई-घर में बैठा चाय पी रहा था, माया रोटी सेंक रही थी। बोली——ख़बरदार मुन्नू दादा, बापू किसी तरह न जानने पावें।

मैंने कहा——ना, नहीं जान पावेंगे, तुम निश्चिन्त रहो।

उसने कहा——तुम ज्यादा दिन यहां न ठहरो मुन्नू दादा। कभी बातों-बातों में मुंह से निकल जायगा। दो एक दिन में ही चले जाओ।

मैंने कहा——चला जाऊंगा। लेकिन यह तो बताओ कि तुमने चिट्ठी लिखकर मुझे बुलाया ही क्यों ?

माया ने कहा—सवेरे-सवेरे खा-पी कर चलो दादा, सारनाथ चलें। वहां एक नया मन्दिर बना है।

मैंने कहा, बेशक देखने की चीज़ है। किन्तु आज रहने दो। आज बहुत थक गया हूं।

आंखों के कोनों में दो बूंद आंसू जमा थे, उन्हें बाएं हाथ से पोंछकर माया बोली—मन्दिर देखने नहीं, मन्दिर का चबूतरा बहुत ठंडा है! वहीं बैठकर तुम से सब सुनूंगी। रोना दबा-दबाकर मैं मरी जा रही हूं दादा। इसीलिए चिट्ठी लिखकर तुमको बुलाया है।

तीसरे पहर घोड़ागाड़ी आकर खड़ी हुई। हम लोग जाने की तैयारी कर रहे थे। गड़बड़ मचा दी सोमनाथ ने। बोले—अच्छा हुआ। इसी गाड़ी से मैं घूम आऊं। मन्दिर तो कहीं भागा नहीं जा रहा है बहू! और किसी दिन जाना।

मैंने कहा—आप जायंगे ?

सोमनाथ ने कहा—एक बंगाली प्रोफ़ेसर ने पांच बजे चाय पीने के लिए निमंत्रण दिया है। हम लोगों के दुसाहस की कहानी सुनेंगे। कई बार आकर आग्रह-अनुरोध कर गये हैं।

माया की ओर एक नज़र डालकर मैंने कहा—तो इस गाड़ी से आप चले जाइए। हम रास्ते से एक और गाड़ी बुला लेंगे।

सोमनाथ ने हंस कर कहा—तो फिर हो चुका! चोरों का यहां ऐसा उपद्रव है कि कुछ पूछो नहीं—घर की रखवाली कौन करेगा? और तुम को भी तो साथ में रहना चाहिए मुन्नू...बूढ़ा हो गया हूं; अकेले जाने की हिम्मत नहीं कर सकता। सहारे को, सम्भालने को एक आदमी चाहिए ही।

ज़रा समझो इस बात को। सोमनाथ के मुंह में यह बात!—जिन

से बड़े-बड़े पुलीस अफ़सर थर्राते थे! इसी से तो यह कामना करता हूं कि वृद्ध होने के पहले ही हम मर जायं! माया ने विशेष आपत्ति नहीं की। बोली—यही हो मुन्नू दादा। मैं घर में रहूंगी।

शहर से निकलकर निराले में पहुंच कर सोमनाथ ने मुझे हाथ पकड़कर गाड़ी से उतार लिया। बोले—अब खोका (जगत्) का हाल कहो।

उनका मुंह देखकर मैं स्तंभित हो गया।

मैंने कहा—पांच बजने को हैं काका! प्रोफ़ेसर जो राह देख रहे होंगे?

उन्होंने कहा—यह सब झूठी बात है। खोका का वृत्तान्त सुनने के लिए ही आया हूं।

बुड्ढे के सूखे झुर्री पड़े गालों के ऊपर से आंसुओं की धारा बह चली। स्वदेशी-युगके सर्वत्यागी नेता, जिनका नाम सबकी ज़बान पर रहता था, उन्होंने किया क्या—उसी धूल से भरे रास्ते के किनारे एक आम के पेड़ की जड़ पर बैठकर बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोने लगे। और किसी ने नहीं देखा, देखा केवल मैंने।

लौटती बार उन्होंने मुझे बार-बार सावधान किया, बोले—बड़ी चालाक है मेरी बहू—खबरदार! वह तो कुछ जान नहीं पाई?

मैंने सिर हिलाकर जवाब दिया—नहीं।

घर आते ही माया ने पूछा—कैसी बैठक हुई बापू?

उत्फुल्ल कंठ से सोमनाथ ने कहा—मैंने सोचा था, यों ही दो-चार आदमी होंगे। मगर वहां तो बड़ी भीड़ थी; कमरा भर गया था। —तुमको अकेले रहने में बड़ा कष्ट हुआ होगा—क्यों न बेटी!

माया ने हंसकर कहा—अकेली मेरी बला रहती। सिंहा बाबू के घर

की लड़कियां आई थीं। खूब ताश का खेल हुआ—खूब होले भूनकर खाये। अभी जरा देर पहले ही वे सब गई हैं।

फिर बरामदे में मुझे ले जाकर चुपके-चुपके बोली—अभिनय की यह केंचुल उतारकर जरा देर जी हल्का कर लिया था दादा। लेकिन तुमको जैसी बातें करने की लत है...कुछ कह तो नहीं डाला उनसे?

मैंने जवाब दिया—कुछ नहीं कहा।

उसी रात को काशी से चला आया।

* * * *

शंकर दादा की मृत्यु

बराहनगर के घर की छत पर हम लोग सदा के माफ़िक जाकर जमा हुए थे। आस्तीन समेटकर चटाई के ऊपर जोर से एक घूसा मारकर शंकर दादा ने बिना किसी संशय और दुबिधा के प्रमाणित कर दिया कि और तीन साल में देश स्वाधीन हो जायगा।

एक कोने में उनकी मा हंसते हुए मुंह से उधर देख रही थीं। शंकर दादा की मा हम सबकी मा थीं, यह मैं पहले ही बता चुका हूं। सुरमा (परोस की एक लड़की) मा की गोद के पास बैठी थी। एकायक सुरमा सीधी होकर बैठ गई और इसराज पर झनाझन उंगलियां चलाना शुरू कर दिया। शंकर दादा ने डांटा—रोको।

मा ने कहा—इसके बदले तुम्हीं सब चिल्लाना बंद करो न। तूने किसी दिन मेरी बेटी के हाथ का इसराज बजाना सुना है?

शंकर दादा ने कहा—यह समय क्या गाने-बजाने का है?

मा ने कहा—क्यों नहीं है, ज़रा सुनूं तो।

शंकर दादा ने कहा—घर में आग लगी है—देश में दमनचक्र चल रहा है—सब जलकर ख़ाक हो रहा है—

सुरमा खिलखिलाकर हंसने लगी। बोली—घर में नहीं, गोशाला में। आवाज़ हमारे घर की दूसरी मंजिल तक पहुंची है।

हिरण्मय ने हाथ-मुंह हिलाकर इस उक्ति पर आपत्ति जताई। बोला—गोशाला माने? तो हम सब क्या हैं? देखो शंकर दादा, वह हम लोगों को गऊ-बैल कह रही हैं।

सुरमा ने कहा—सचमुच मेरा कलेजा कांप रहा था। न जानें क्या भयानक मामला है! एकदम दौड़ी हुई आई हूं।

शंकर दादा ने कहा—अर्थात् तुम एक बज्र-झूठी हो। दौड़ी आई हो, इसराज हाथ में लेकर तो?

सुरमा बातों में हारनेवाली लड़की नहीं।

उसने कहा—इसी इसराज को खड़ा करने से यह लाठी का काम दे सकता है।

व्यंग्य के स्वर में शंकर दादा ने कहा—किन्तु इसे खड़ा कौन करेगा? तुम लोग?

गुस्से से मुंह लाल करके सुरमा ने कहा—कर सकती हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करके देखा है?

शंकर दादा ने कहा—अच्छा परीक्षा करता हूं—ज़रा पास आओ।

इसके बाद कुछ कहे-सुने विना उन्होंने एकायक एक आलपीन लेकर सुरमा के सुन्दर गोरे-गोरे हाथ के अंगूठे में वह आलपीन घुसेड़ दी। मा

हां-हां कर उठीं। बोलीं—ओरे डकैत लड़के, क्या करता है?—देखो तो इसकी हरकत—

शंकर दादा ने कहा—मामूली एक आलपीन है मा। बम नहीं है, मशीनगन नहीं है।—ए:, देखता हूं, खून निकल आया!

सुरमा ने कहा—रक्त कहां है दादा?

सुरमा के खीझे हुए चेहरे पर इतनी देर में स्वच्छ हंसी की आभा फैल गई। शंकर दादा का ऐसा पागलपन हम लोग पहले भी देख चुके थे। यों यह बड़े ही गंभीर आदमी हैं, लेकिन बीच-बीच में एक बच्चा जैसे उनके भीतर खेलने लगता है।

सुरमा ने कहा—रक्त नहीं, शहद है।

शंकर ने कहा—अच्छा तो इस शहद से एक टीका तो मेरे माथे में लगा दो।

मा नाराज़ हो उठीं—बहादुरी कितनी है! टीका लगवाकर तुम सब जय-यात्रा के लिए निकलोगे क्या!

साथ ही साथ सुरमा ने भी टिप्पणी की—थोड़े से बाल भी काट देने होंगे न शंकर दादा, महावीरों के धनुष की डोरी बनेगी उनकी—क्यों?

मैंने हंसते-हंसते कहा—यह नहीं चलेगा शंकर दादा। चाहे जो कहिए, आपका तिलक-इलक एकदम पुराने ज़माने का है।

शंकर दादा ने कहा—इसमें हमारा तो कुछ नहीं है मुन्नू, यह केवल उसी के लिए है। शंकर दादा का स्वर गंभीर हो उठा। उन्होंने कहा—'तिलक लगवाकर कोई बाघ या सिंह नहीं हो जाता, यह तुम सभी जानते हो। किन्तु जिस हाथ से सुरमा मेरे टीका लगा देगी, उस हाथ में फिर इसराज पकड़ते वह लज्जित होगी।

सुरमा जल उठी। बोली—गाना-बजाना, ग्रामोद-ग्राह्लाद कुछ भी न रहेगा, देश के ग्रादमी संन्यासी हो जायंगे—यही ग्राप लोगों की साधना है? देश को मरुभूमि बनाना चाहते हैं?

शंकर दादा ने कहा—नहीं, हम चाहते हैं ऐश्वर्यशाली देश। सब ग्रच्छी हालत में रहेंगे, ग्रच्छा खायंगे—ग्रच्छा पहनेंगे। ग्रौर उसके लिए परकाल तक राह देखने को भी नहीं कहते—सिर्फ़ यही तीन साल। हम जो कहते हैं, उसी के माफ़िक काम करो तो सब लोग—

सन्ध्या के बाद सुरमा फिर ग्राई। घर में ग्रकेले शंकर दादा थे। यह सब हाल बाद को मैंने सुरमा के मुंह से सुना है। उसके मुंह से सुनी कहानी ही मैं ग्रपने ढंग से कह रहा हूं। ग्रन्त में लगभग एक महीने भर के ग्रलावा बीच की बातों से मेरा कोई ताल्लुक नहीं है।

फ़र्श के ऊपर शंकर दादा के कपड़े फैले हुए थे। छोटी-मोटी चीजों का तो ढेर ही समझिए, लगा था। एक टीन के बक्स में शंकर दादा सब सामान भरने की चेष्टा कर रहे थे। सुरमा के पैरों की ग्राहट पाकर सिर उठाकर उन्होंने पूछा—क्यों?

सुरमा ने कहा—मैंने इसराज फेंक दिया।

"ग्रो:!" कहकर शंकर दादा फिर ग्रपने काम में लग गये।

सुरमा खड़े-खड़े दम भर देखती रही। ग्रन्त को बोली—ग्रापके शरीर में चाहे जितना जोर हो, सुई के छेद में हाथी नहीं घुसेगा—हटिए।

शंकर दादा ने स्वस्ति की सांस ली। फिर सुरमा को सावधान कर दिया—यह सब ज़रूरी है; कुछ रह न जाय।

सुरमा ने कहा—सब? यह? वह भी?

उस कपड़ों के ढेर के भीतर से निकलने लगे—फटी बनयाइन, ऊपर

से टूटी फ़ाउंटेन पेन, मय एक पंखे की डंडी तक।

सुरमा ने पूछा--यह सब इसके भीतर आया कैसे?

शंकर दादा ने कहा--इसी तरह सब आ जाता है। संसार की सब बेकार चीजें बहा देने से क्या निर्वाह होता है?

ज़रा स्तब्ध रहकर सुरमा शंकर दादा के और कुछ कहने की प्रत्याशा करके चुप रही। इसके बाद सिर उठाकर गरम स्वर में बोली--लेकिन आप ऐसा कर सकते हैं। जो लोग आपके साथ चलने के लिए दौड़ में पिछड़ गये, उनको धक्का देकर गिरा देने में आप को ज़रा अटक नहीं होती। आप तो मनुष्य नहीं हैं।

शंकर दादा ने कहा--तो मैं जानवर हूं?

सुरमा ने कहा--नहीं, पत्थर हैं।

इसके बाद सुरमा ने प्रश्न किया--सबेरे चले जा रहे हैं?

शंकर दादा ने कहा--हाँ।

सुरमा ने कहा--कहां जा रहे हैं?

शंकर दादा ने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया।

सुरमा अधीर भाव से कहने लगी--इसके माने--आप बतावेंगे नहीं, मुझ पर विश्वास करके वह कह नहीं सकते। अच्छी बात है। लौटेंगे कितने दिन में, यह बताने में भी कोई आपत्ति है?

सुरमा की उत्तेजना देख शंकर दादा धीरे-धीरे मुसकाने लगे। बोले -- यह क्या मैं ही जानता हूं कि कब लौटना होगा, जो तुझे बताऊं पगली?

सुरमा ने कहा--आप कुछ नहीं जानते; सिर्फ़ एक ही बात अच्छी तरह जान रखी है कि तीन वर्ष में देश स्वाधीन हो जायगा। आपके हिसाब में भूल नहीं होती।

शंकर दादा ने कहा—फ़ीस देकर कालिज में गणित पढ़ा है, भूल कैसे होगी ?

अकस्मात् शंकर दादा का स्वर अति मधुर और स्निग्ध हो उठा। बोले—क्यों हम लोगों के बारे में इतनी चिन्ता करती हो सुरमा? हम कितने युवक हैं—शायद कई हज़ार होंगे—

सुरमा ने कहा—क्यों न सोचूं—क्यों न चिन्ता करूं? ये तो इस मिट्टी के ही मनुष्य हैं, जिसके हम सब हैं; अथच देश के प्रति ऐसा प्यार—ऐसी भक्ति इनमें कहां से आई? मैं ऐसा मन का ज़ोर कहां से पाऊं जो चिन्ता न करूं? इनमें से एक-एक युवक जाति के नवीन इतिहास की रचना कर सकता है—युग को पलट सकता है!

ज़रा चुप रहकर एक निःश्वास छोड़कर उसने कहा—अथच देश के कितने लोग इनको जानते हैं!

शंकर दादा ने गम्भीर कण्ठ से कहा—न जानें, क्या हानि है। किन्तु इन लोगों का देश के लिए इतना प्यार आज सब मनुष्यों में फैल रहा है। बहन, मन का चेहरा देख नहीं पड़ता, नहीं तो तुम देखतीं कि आज इस इतने बड़े देश में शान्त, स्वस्थ, निश्चिन्त एक भी आदमी नहीं है।

सुरमा ने कहा—कोई भी नहीं?

शंकर दादा ने कहा—ना। नये सूर्य का उदय हो रहा है, नवप्रभात आ रहा है—मनुष्य कब तक आंखें मूंदे रह सकता है?

दोनों जने स्तब्ध मौन हो रहे। सहसा सुरमा झुककर शंकर दादा के पैरों में प्रणाम करने के लिए बढ़ी। शंकर दादा डरकर पीछे हट गये।

बोले—यह मुश्किल देखो। पत्थर कहकर पहले गाली दी, अब तुम सचमुच मुझे पत्थर का देवता बनाना चाहती हो शायद?—ना—ना—ना—

इसके बाद कितने दिन बीत गये, शंकर दादा का कोई पता नहीं। इस बीच में सुरमा ने बी० ए० तक पास कर लिया--एक स्कालरशिप भी उसे मिला है। बाग बाजार की तरफ़ अब उसके बाप ने नया घर बनवा लिया है--ये लोग वहीं रहते हैं। इसी से आजकल माताजी से सुरमा की बहुत कम भेंट होती है। वह उस टूटे-फूटे पलस्तरवाले पुराने मकान में रहती हैं। लड़का पास नहीं है, किन्तु उनका सदा हंसता हुआ चेहरा वैसा ही है। हम सब पराये लड़के मा के प्यार को आपस में बांट लेते हैं।

इसी बीच में सुरमा की मौसी अपनी बड़ी लड़की को ब्याहने के लिए कलकत्ते आई। मौसा सब-रजिस्ट्रार हैं। कुछ दिन हुए ढाके की तरफ़ एक गांव में उनकी बदली हो गई है। सुरमा के मोहल्ले में ही उनका निवास है।

सबेरे के समय सुरमा और मौसी की मंझली बेटी आभा एक साथ बैठी गपशप लड़ा रही थीं। जूतों की भयानक चरमराहट सुनकर आभा ने घूमकर देखा, एक गोरा फ़ौजी घर में घुस रहा है। दालान में शुरू से आखिर तक मार्च करके पास आकर उसने एक फ़ौजी सलाम किया।

आभा उसे अच्छी तरह सिर से पैर तक देखकर खिलखिलाकर हंस उठी। बोली--भाई दीदी, तू डर गई? यह बाघ नहीं, बाघ की मौसी है, म्याऊं-म्याऊं करती है।

इस लड़के की बात इसके पहले भी इन दोनों बहनों में हो चुकी थी। वह होस्टल में रहता है। अबकी एम० ए० की परीक्षा देगा। आभा के परिवार से विशेष घनिष्ठता है। आभा की मा को मा कहता है। नाम है विनयकुमार।

विनय आकर अप्रतिभ हो गया। सुरमा से ही उसके ब्याह की बात-

चीत चल रही थी। उसने ग़लती की थी। उसने समझा था--आभा और उसकी बहन हांसी बैठी हैं। कुछ कहकर वह भागने की चेष्टा में था; किन्तु आभा ने नहीं छोड़ा।

उसने कहा--सलाम तो तुमने की विनय दादा, लेकिन साहब ने मुंह फेर लिया।

लक्ष्य थी सुरमा।

विनय ने कहा--साहब कहां हैं?

आभा ने कहा--तुम बिल्कुल देख नहीं पा रहे हो?

सुरमा का चेहरा लाल हो उठा लाज से। इसी तरह का एक सलाह-मशवरा चल रहा है, यह अंदाज से सुरमा ने समझ लिया था। किन्तु इस समय विनय के सामने आभा को इसकी सजा देने का कोई उपाय नहीं था न, इसी से आभा को मौक़ा मिल गया।

आभा ने कहा--देखो तो चारों तरफ़ खोजकर, नजर दौड़ाकर, साड़ी-वाड़ी पहनकर साहब छद्मवेष में यहां कहीं हैं कि नहीं।

विनय ने कहा--साहब-वाहब को मैं नहीं मानता। मैं किसी का गुलाम नहीं हूं।

आभा ने कहा--अभी न होगे; लेकिन जब बंगाली के लड़के हो, तब होना तो होगा ही। खामखा मालिक को चिढ़ा न रखो। और यह तुम खुद ही अच्छी तरह जानते हो। नहीं तो सलाम की रिहर्सल किसके लिए कर रहे हो, जरा सुनूं?

विनय चिढ़ गया। बोला--कांच और हीरे का फ़र्क समझने में बुद्धि की जरूरत होती है--समझीं? इसे साहब-सलाम नहीं कहते--हम लोगों की रेजीमेंट में सबसे बड़ा प्रणाम करने योग्य आदमी जब कोई आता है--

हंसी की चोट से आभा ने बात पूरी नहीं करने दी। बोली—ठीक, ठीक—ऐसा नमस्य (प्रणाम करने के योग्य) और कौन है तुम्हारे लिए? किन्तु यह नौटंकी की पोशाक उतारकर अब ज़रा भले आदमी बनकर आओ तो ज़रा।

विनय ने कहा—यूनिवर्सिटी ट्रेनिंग कोर की पोशाक है यह—नौटंकी की पोशाक कहोगी तो मुश्किल में पड़ जाओगी, जेल हो सकती है। सबेरे के वक़्त परेड के लिए मैदान में गया था, वहीं से लौट रहा हूं।

आभा ने कहा—परेड की थी। बांस की बन्दूक लेकर?

विनय बिगड़कर चला गया।

आभा की हंसी और भी उच्छ्वसित हो उठी। बोली—आदमी कैसे हैं, बताओ तो रांगा दीदी।* ज़रा से में चिढ़ जाते हैं। इनको चिढ़ाने में मज़ा आता है। लेकिन बुद्धि तेज़ है।

इसी लड़के के साथ आज शंकर दादा का ख़याल आता है। उनमें कितना धैर्य है, कितना साहस है—किन्तु उन्हें चिढ़ाने में एक मिनट भी नहीं लगता। तब जान पड़ता है कि वह एकदम बच्चे हैं। हेमन्त की इस स्निग्ध प्रभात बेला में शायद पूर्व-बंगाल के किसी दूर-दुर्गम गांव के किनारे—किसी दलदल या जलमय जंगल में पहाड़ के पास इस समय वे क्या करते होंगे? क्या सोचते होंगे? कब आकाश में उनका चिर-प्रतीक्षित नवीन सूर्य, कब नवप्रभात होगा—घर के लड़के सब फिर घर लौटकर आवेंगे!

आभा वग़ैरह लगभग तीन महीने रहीं। जाने के कई दिन पहले से वह सुरमा के पीछे पड़ गई। कहती—चलो न भाई रांगा दीदी, कुछ दिन

---

* बंगला में रांगा का अर्थ है ख़ूबसूरत। —अनुवादक

रह आओ। बड़ी दीदी तो अपने वर के साथ चली गई; अब मैं किससे झगड़ा करूं!

इसके बाद उसने अपनी उस जगह का वर्णन भी बहुत विस्मयजनक और उत्सुकता बढ़ानेवाले ढंग से करना शुरू कर दिया।—ब्रह्मपुत्र (नद) से एक बड़ी भारी नहर निकली है। उसी के किनारे उन लोगों का घर है। ज्वार के समय घर की खिड़की के नीचे जल छल-छल करता है। छत पर से देखी जाती है बहुत दूर पर काली-काली मेघना नदी। नावें नहीं देख पड़तीं, जैसे क़तार की क़तार हज़ारों 'पाल' मेघना नदी के ऊपर छाती फुलाये जा रहे हैं, ऐसा जान पड़ता है।

ऐसी ही और न जाने कितनी बातें! सुरमा जाने के लिए चंचल हो उठती है; लेकिन पिता की अनुमति नहीं मिलती। वह बिना मा की लड़की को अपने पास से दूर जाने देना नहीं चाहते—आंखों की ओट नहीं होने देना चाहते।

किन्तु लगभग डेढ़ वर्ष के बाद यही पिता अचिन्तित रूप से सुरमा पर सदय हो उठे। बोले—चलो बेटी, हरलाल (आभा के पिता) बार-बार लिख चुके हैं तो एक बार उधर घूम आया जाय। और ऐसी खुली स्वच्छ हवा में मेरी तन्दुरुस्ती भी सुधर जायगी।

सुरमा ने कहा—शरीर की चिन्ता से तो तुम्हें नींद नहीं आती बाबूजी! असल बात क्या है? सिर की बला को बिदा करने का शायद फिर नया षड्यन्त्र हो रहा है?

पिता ने कहा—यही बात अगर हो तो वह भी इसी शरीर के ही कारण है न? अवस्था तो मेरी कुछ कम नहीं है। अगर एकायक आंखें मूंद लूं—

सुरमा ने कहा—समझ गई। मैं तुम्हारे लिए बोझ हूं। मुझे सिर

से उतारे बिना तुम्हें शान्ति नहीं है। चाहे जहां हो--

पिता चिढ़ उठे। बोले--चाहे जहां हो के माने? विनय क्या ऐसा-वैसा लड़का है? हजारों में एक ऐसा नहीं मिलने का। हरलाल ने लिखा है--विनय के मा-बाप भी वहां मौजूद हैं। योगायोग तो देखो ज़रा।

इसके बाद लड़की को पास बिठाकर छोटी बच्ची की तरह सुरमा के माथे पर हाथ फेरने लगे। बोले--समझकर देखो न बेटी, मेरे मन में भी तो साध है--उमंग है। तेरी मा चली गई। तभी से घर अन्धकार है। मैंने कभी चूने की पुताई नहीं कराई। ज़रूरत से ज़्यादा एक रोशनी नहीं की। तू ही बता, आदमी इस तरह रह सकता है।

सुरमा की बड़ी व्यथा पर चोट पहुंची। बाप का प्रसन्न मुख देखने के लिए वह ऐसा कोई काम नहीं जिसे कर न सके।

ढाका से मोटर-लंच करके ये लोग वहां जा पहुचे। बड़े भारी बरगद के पेड़ के नीचे उतरने का घाट है। लंच की आवाज़ सुनकर सब लोग दौड़ आये हैं। आभा भी आई है--वह ज़रा दूर पर खड़ी है। सुरमा ने पास आकर उसे एकदम लिपटा लिया। मकान ठीक नहर के ऊपर न होने पर भी उसके निकट ही है। इधर-उधर पुराने ज़माने के टूटे-फूटे मकान हैं जिन्हें खंडहर ही कहना चाहिए।--पतली ईंटों के टुकड़े ढेर हो रहे हैं।

आभा के कानों में सुरमा ने कहा--तुम्हारे सोनागांव में सोना नहीं है--केवल ईंट-रोड़े हैं।

आभा ने कहा--सोना क्या राह में रखने की चीज है?

बहुत दूर पर सफ़ेद रंग के कई छोटे-छोटे घर थे। उन्हीं को उंगली से दिखाकर आभा ने कहा--सोना वहीं पर मौजूद है रांगा दीदी।

सुरमा ने पूछा---यही उन लोगों का डेरा है ?

आभा ने कहा---यह है थाना। पीछे रहने के क्वार्टर हैं। सोना पुलीस की हिफ़ाजत में है---निश्चिन्त रहना भाई।

सुरमा ने पूछा---तेरे विनय दादा पुलीस हो गये हैं ?

सुरमा कुछ गम्भीर हो गई।

आभा ने कहा---नये होने के कारण ही गांव में आना पड़ा। बाबूजी कहते थे कि उनकी विद्या और बुद्धि जैसी है, उससे ज़रा पक्के पोढ़े होने पर सदर के अफ़सर होने में देर नहीं लगेगी। चिन्ता के लिए कोई बात न रहेगी।

मलिन हंसी के साथ सुरमा ने कहा---ठीक कहती है तू आभा। देश को यह क्या हो गया है आजकल? लड़केबालों के लिए मा-बापों की चिन्ता किसी तरह मिटती ही नहीं। लड़के के लिए बाप को फ़िक्र, स्त्री के लिए स्वामी को फ़िक्र,---न जाने कब कौन क्या कर बैठे। मगर हां, लड़का पुलीस में भर्ती होने से फिर निश्चिन्त हैं। सागौन की लकड़ी में घुन नहीं लग सकता।

तीसरे पहर सुरमा और आभा नहर की तरफ़ घूमने निकलती थीं। घूमने लायक ही जगह है। बरसात की तेज़ धारा तीव्र वेग से ब्रह्मपुत्र की ओर जा रही है। पक्का रास्ता नहर के किनारे-किनारे मेघना नदी तक चला गया है। किनारे का जंगल थर-थर करके कांप रहा है। उस पार दिगान्त तक धान सिर्की और पाट के खेत फैले हैं। जहां तक दृष्टि जाती है सतेज हरेरी की शोभा देख पड़ती है।

एक दिन दोनों सहेलियां बहुत दूर टहलते-टहलते निकल गईं। भय का अवश्य कोई कारण नहीं; साथ में नौकर रामधन था। वह पुराना नौकर था और उसका शरीर कसरती होने के कारण यथेष्ट बलवान्

भी था। एक मोड़ पर घूमते ही आभा ने देखा, इमली के पेड़ के नीचे, जंगल के किनारे विनय खड़ा हुआ उनकी ओर ताक रहा है।

आभा ने विस्मित होकर पूछा--यहां ?

माथे पर हाथ छुआकर विनय ने कहा--नसीब ! बताओ क्या करूं-खोज-तलाश में आना पड़ता है।

सुरमा ने कहा--लेकिन मन नाम की जो एक चीज है विनय बाबू, उसे पीछा करके पकड़ना चाहने से वह भड़ककर भाग खड़ा होता है।

विनय ने दांत से जीभ काटकर कहा--आपने भी गजब किया ! आप क्या यही समझ रही हैं कि मैं आपका पीछा कर रहा हूं? अगर यही बात होती तो इसकी क्या ज़रूरत थी, बतलाइए तो ?

कपड़े के नीचे कमर में रिवाल्वर बंधा था, सावधानी से निकालकर उसे दिखाया। इसके बाद दुखित स्वर में कहने लगा--पुलीस की नौकरी मैंने कर ली है, इसी से जान पड़ता है कि अब की यहां आने के बाद से आप मन भारी किये हुए हैं। पुलीस न होकर अगर मैं आज पाट का महाजन होता तो आप शायद बहुत खुश होतीं। तथापि हम लोग दोषी-अपराधी को सजा दिलाते हैं, उन महाजनों की तरह निर्दोष किसानों का ख़ून नहीं चूसते---

सुरमा ने हंसकर कहा--ना, पाट के महाजन के ऊपर भी मेरी अचल भक्ति नहीं है। लेकिन आप यहां किसका पीछा करते फिरते हैं, यह तो बताइए।

ज़रा इधर-उधर करके विनय ने कहा--एक आध नहीं, समूचा एक दल है। और वे चोर-डाकू भी नहीं हैं--

सुरमा ने पूछा--स्वदेशी डकैत हैं ?

विनय ने कहा--डाके की कोई खबर नहीं पाई गई। झूठे ही बदनाम

क्यों कहूं? मगर स्वदेशी जरूर हैं—जलती हुई आग!

आग्रह के स्वर में सुरमा ने पूछा—अच्छा, पकड़े जाने पर क्या उन लोगों को फांसी होगी?

विनय ने कहा—आप क्या सोचती हैं, बताइए? फांसी क्या इतनी सहज बात है? उनके खिलाफ़ कोई अभियोग नहीं है।

सुरमा ने कहा—फिर?

विनय ने कहा—यही जो मैंने कहा, वे जलती हुई आग हैं। ऊपर वालों के हुक्म से इसी से उनकी निगरानी रखने का नियम है।

इसी के पांच-सात दिन बाद एकदम एक असम्भव घटना हो गई। विनय की माता ने शायद अपनी होनेवाली पुत्रवधू को अच्छी तरह देखने-भालने के लिए ही आभा और सुरमा को न्योता दिया। खाना-पीना समाप्त होने में थोड़ी-सी रात हो गई। ये सब लौटे आ रहे थे। अंधेरे के बीच किसी आदमी ने पूछा—थाना किधर है?

नौकर रामधन सबसे आगे था। लापरवाही के स्वर में जवाब दिया—दाहने हाथ को चले जाओ।

आकाश में बादल छाये थे, घना अन्धेरा था। वह आदमी एकायक खांसने लगा। ओह, वह कैसी जबर्दस्त खांसी थी। जान पड़ता था, पंजर के हाड़ बन्धन तोड़कर बाहर निकल पड़ेंगे।

सुरमा के हाथ में टार्च थी। बार-बार उसका बटन दबाकर उसके उजाले में रास्ता देखती जाती थी। उसने टार्च की रोशनी उस आदमी के चेहरे पर डाली। क्षण भर, उसके बाद और एक बार। जैसे बिजली का धक्का लग गया हो, इस तरह चौंक कर खड़ी हो गई। उसने फिर उधर रोशनी डाली।

आभा ने कहा—खड़ी क्यों हो गई रांगा दीदी?

उस आदमी की ओर कई पग आगे बढ़कर सुरमा ने कहा—हम लोगों के साथ आइए—हम पहुंचा देंगे।

उत्कट खांसी के बीच में—खांसी ज़रा रुकने पर—उस आदमी ने कहा—आप लोग तो बाएं हाथ की ओर मुड़ रहे हैं।

सुरमा ने कहा—दरकार होने पर दाहने हाथ भी जाया जायेगा। किन्तु इस घोर घने अन्धकार में आप रात भर दाहने-बाएं दौड़ लगाकर भी क्या थाने पहुंचने की आशा करते हैं?

सुरमा के व्यग्र भाव से अवाक् होकर आभा ने आकर उसका हाथ पकड़ा। सुरमा ने फुसफुसाकर उसके कान में कहा—शंकर दादा हैं री।

इन दोनों सहेलियों में शंकर दादा के बारे में बहुत बातें हो चुकी थीं। हमजोलियों में यह एक कितने बड़े गर्व की बात थी कि किसी की शंकर दादा के साथ जान-पहचान है!

आभा ने पीछे की ओर ताका। बहुत धीमी मट्ठी चाल से वह छाया-मूर्ति आ रही थी। एकाएक शंकर दादा कह उठे—जाता ज़रूर हूं, लेकिन मुझे बड़ी भूख लगी है।—

सुरमा ने कहा—थाने में शायद पुलाव-कलिया थाली में सजाकर रखे हैं?

शंकर दादा ने जवाब दिया—लेकिन वे निहायत बेक़दरी भी नहीं करेंगे, यह भी जान रखिए।

घर में आकर सुरमा ने देखा, सब लोग बेखबर सो रहे हैं। इतनी रात को राह से एक आफ़त मोल ले आने के कारण रामधन बहुत खीझ उठा था। उसने तीखे स्वर में कहा—जाओ मालकिनो, घर में जाकर दरवाजा बन्द कर लो। मैं लाट साहब को थाने में पहुंचा आऊं।

आभा ने कहा---नहीं। बैठक खाने के पास का कमरा खोल दे और पैर धोने का पानी ले आ।

शंकर दादा ने सुरमा को पहचाना नहीं। अन्धेरी रात का समय था। फिर बहुत दिनों से सुरमा को देखा नहीं। इसके सिवा इस आदमी के निकट तुम, मैं, सभी, एकदम स्रोत के सेवार की तरह हैं। जब त क सामने देखते हैं तब तक हम हैं; आंखों की ओट होते ही हम फिर कोई नहीं हैं। हमारा ध्यान ही उनको नहीं रहेगा।

आश्चर्य के साथ शंकर दादा ने पूछा---यह घर किसका है! आप लोगों का मतलब क्या है? यहां अटका रखना चाहती हैं क्या?

सुरमा ने कहा---रात भर तो जरूर ही। भूख लगी है, सो कुछ खा-पी कर विश्राम करते-करते ही तो सवेरा हो जायेगा। इतना डरते क्यों हैं? ऐसा कौन सोना-चांदी पहने हुए हैं?

आभा के कान में कहा---देह में नहीं---मन में उनके कितना सोना---सोने का पहाड़ है री आभा! राह की धूल में सचमुच मैं सोना पड़ा पा गई।

दोनों सहेलियां दौड़कर खाने की सामग्री लेने गईं। उस समय घर में खाने-पीने की क्या चीज रह सकती थी---यही जरा-सा दूध था। कन्धे पर एक चुनियाई हुई धोती और दोनों हाथों में दो कटोरों में दूध और कुछ मिठाई लेकर आभा सुरमा के पास आई। बोली---रांगा दीदी तुम जल का गिलास ले आओ। देर न करो।---

तो भी सुरमा को थोड़ी देर हुई। आंख-मुंह पोंछ कर, शान्त होकर वह कमरे में आई। शंकर दादा से बोली---खाना हो गया, अब जरा सो रहिए---बिछौना बिछा दिया गया है।

इसके बाद उनके विस्मित मुख की ओर देखकर उसने कहा---मुझे

क्या बिल्कुल ही नहीं पहचान पाये शंकर दादा?

तीक्ष्ण दृष्टि से ज़रा देखकर शंकर दादा के मुख में हंसी फूटी।

सुरमा कहने लगी—यह बढ़ी हुई मूछ-दाढ़ी और अस्तव्यस्त बड़े बड़े बालोंवाला पागलों का-सा चेहरा होने पर भी मैंने एक नजर में ही पहचान लिया था।

शंकर दादा ने कहा—आवाज़ सुन-सुन कर मुझे भी पहचानी-सी लगती थी। उस समय तुम्हारे हाथ में रोशनी थी और मेरी आंखों में अन्धकार था। इसके सिवा ऐसी जगह, ऐसी अवस्था में—ज़रा सोचो तो सही। घर से जब चल दिया था, उसको भी तो कुछ थोड़े दिन नहीं हुए।

सुरमा ने कहा—कितने दिन हुए, बताइए तो हिसाब करके।

इतने दुःख में भी सुरमा के स्वर में कौतूहल की झलक थी। बोली—आपके उन तीन साल में अब और कितने दिन बाक़ी हैं शंकर दादा?

शंकर दादा जोश से उठ बैठे। उनके अत्यन्त कृश मुख में गढ़े में धंसी हुई दोनों आंखें जैसे जल उठीं। बोले—तीन में न सही, तीस साल में होगा। इससे क्या आता-जाता है? तुम समझती हो, मैं झूठ कहता हूं? मैं घर-बार आत्मीय-स्वजन सबको छोड़कर मिथ्या के पीछे गली-गली मारा-मारा फिरा हूं? मैं मूर्ख हूं?

सुरमा ने उसके पास जाकर उन्हें लिटा दिया, सिर के नीचे तकिया लगा दिया और धीरे-धीरे हाथ फेरने लगी। बोली—मैं अपनी ग़ल्ती मानती हूं शंकर दादा, मुझे क्षमा करो। तुम्हारी बुद्धि की जोड़ नहीं है। अब ज़रा शान्त होकर सो तो रहो।

आभा ने कहा—लेकिन आप तो इच्छा करके ही जेल जा रहे हैं। तो अब क्या स्वाधीनता की चेष्टा से इस्तीफ़ा है?

शंकर दादा ने अब की शान्त भाव से ही उत्तर दिया—मैं जाता

हूं, लेकिन सभी नहीं जायंगे। जेल में कितने लोग समा सकते हैं? जेल की दीवारें क्या किसी के मन को——इरादे को अटका सकती है? किसी देश में कोई शक्ति क्या ऐसा कर सकती है?

आभा ने तर्क किया——सचमुच अगर इतना विश्वास है तो आप ही क्यों जेल जाना चाहते हैं।

शंकर दादा ने कहा——क्या मैं खुशी से जा रहा हूं?

शंकर दादा के कंठ में अभिमान का स्वर बज उठा। बोले——इतने दिन इतना कष्ट उठाने के बाद ज़रा विश्राम करने जा रहा हूं, इस पर तुम लोग तरह-तरह की बातें कहोगे? देखो तो, इस शरीर से क्या काम किया जा सकता है।

गुस्सा करके उन्होंने सैकड़ों जगह से फटा मैला कुर्ता उतार दिया। उस देह को कृश शीर्ण-जीर्ण कहना——कुछ भी न कहना है। एकदम वीभत्स दृश्य था। करुणा को दबा कर घृणा ही जैसे मन में सिर उठाना चाहती थी।

शंकर दादा ने कहा——देखो तो ज़रा। टार्च होगी, ज़रा रोशनी में देखो। मैं क्या धोखा-धड़ी करके हटा जा रहा हूं?

आभा ने चटपट झुककर शंकर दादा के पैरों की धूल माथे से लगाई। बोली——दादा, आप मुझे नहीं पहचानते। लेकिन मैं जानती हूं आप को। आप धोखा नहीं दे सकते, आपके भीतर तिल भर भी धोखा-धड़ी नहीं है। आप कितने बड़े हैं।——

इस बात से शंकर दादा के मन में क्रोध नहीं रह पाया। वह हंस पड़े। बोले——सो मैं समझ गया हूं। इसी बीच में सुरमा ने सब कह डाला है। (सुरमा की ओर इशारा करके) उसकी एक बात पर भी विश्वास न करो बहन। वह मुझे बहुत बदनाम करती है। हम लोगों की ही चिन्ता

उसे दिन-रात रहती है।

सुरमा ने कहा—आप लोग भूलने के नहीं हैं, भूलूं कैसे? फिर आप लोगों के बारे में सोचे बिना उपाय क्या है? आपको शायद याद नहीं होगा दादा, आपने कहा था—इस मिट्टी की धूल में छोटे-बड़े सब के लिए सुख की बाढ़ आवेगी; किसी को फिर दुःख न रहेगा! घर के सब लड़के फिर घर आवेंगे। मैं आपकी हरएक बात पर विश्वास करके दिन गिन रही हूं।

आवेग से उसका गला रुंध-सा गया। शंकर दादा स्तब्ध निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर ताकते रहे। उसके बाद गम्भीर स्वर से बोले—वह दिन जरूर ही आवेगा बहन, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जरा शायद देर हो जायगी। मैं नहीं देखूंगा, लेकिन तुम लोग देखोगी। यह बात निश्चय जान रखो, तुम्हारे ये दादा ही देश में आखिरी दुखियों का दल हैं।

उस दिन रविवार था। सवेरे के समय सुरमा के बाप और मौसा घूमने निकले थे। छुट्टी के दिन कुछ विशेष खाने-पीने की व्यवस्था होती है। घर के मालिक खुद बाज़ार जाकर सौदा खरीदते हैं; मछुओं की बस्ती में घूमकर मछली खरीदकर घर लौटने में दोपहर हो जायगी।

सुरमा और आभा सोकर उठीं तो बाहर आकर देखा, शंकर दादा हाथ-मुंह धोकर बरामदे में आकर बैठे हैं। उन्होंने सुरमा से कहा—थोड़ा-सा चूना ला सकती हो भाई, लगाऊंगा। देह भर में कोई जगह समूची नहीं रक्खी, नोच-नोच के खा लिया।

उद्विग्न स्वर में सुरमा ने पूछा—किसने?

शंकर दादा ने हंसकर कहा—मेरी ही प्रजाओं ने, जिनके अधिकार

में मैंने हिस्सा लगाया था। यही हम लोग जैसे साहब बहादुर को खोंचे मारते हैं, उसी तरह और क्या!

कहकर वह हो-हो करके हंस उठे। फिर कहने लगे—ये सब जो पाट के खेत देख रही हो, उन्हीं के भीतर मैंने राजगद्दी लगाई थी--एकदम मेघना तक मेरा एकच्छत्र राज्य था। दिन भर में बीस-पच्चीस जोंकें शरीर से छुड़ानी पड़ती थीं, इसके सिवा और कोई असुविधा नहीं थी। मजे में था। लेकिन भाग्य देखो, आकाश के देवता ने खिलाफ़ होकर किसी तरह वहां टिकने नहीं दिया।

शंकर दादा के कहने का ढंग देखकर ये दोनों भी हंस पड़ीं! उसी पाट के खेत की बातें शुरू हुईं। दो विमुग्ध श्रोताओं के सामने कितने दिन बाद वह जी खोलकर बातें कर रहे थे--यह जैसे आयु के किनारे पहुंच गये, अवसादग्रस्त, रोगजर्जर कृश हमारे शंकर दादा नहीं, और कोई था।

नहर के ऊपर पाट के खेत में जहां तक देखो, खेत के ऊपर खेत चले गये हैं। सतेज पाट के पौधे जगह-जगह मनुष्यों की लम्बाई से ढाई गुने ऊंचे हो गये हैं। उन्हीं के भीतर जहां चाहो थोड़े से पौधे तोड़कर सोकर, बैठकर, सारा दिन बिता दो। इसके बाद रात होने पर चुपके-से निकल पड़ो। नहर में पानी है, मजे से नहाओ-धोओ। ताड़ के पेड़ों के नीचे इस समय दो-एक पके फल मिल जाते हैं, नसीब में हो तो गांव के भीतर किसी की रसोई में इससे अच्छा भोजन भी मिल सकता है। उस पर शंकर दादा में कुछ बाबूपना भी है; रात ही रात नारियल के पत्ते बटोर कर एक गद्दी तैयार कर ली। थी तो बहुत अच्छी, लेकिन आखिरी बरसात बड़े जोर से हुई; नारियल के पत्ते सड़ गये, सिर्फ़ डंठल रह गये। खेत के भीतर हाथ-हाथ भर पानी भर गया। बुखार आ गया जो बराबर

छः महीने तक चलता रहा। अन्त में चौबीसों घंटे रहने लगा। खांसने से डले के डले खून आने लगा। इन्हीं सब तरह-तरह के झंझटों में पड़कर ही अन्त को वह थाने में जाने का इरादा करके निकले हैं!

इस वर्णन के बीच में ही शंकर दादा ने पूछा—तुम लोगों ने अनानास कभी खाया है?

अपनी छाती ठोककर बोले—मैं-मैं खाता हूं—।

आभा ने कहा—यह तो अनानास की फ़सल नहीं है! कलकत्ते में सिर्फ़ मिलता है। तो यहां क्या—।

शंकर दादा ने कहा—हां, यहां भी मिलता है। बदरगंज की हाट में तो हर सनीचर को। पिछले सनीचर को मैंने अनानास खाया था। एक नहीं, दो-दो। अब भी उसकी खट्टी डकार आती है।

सुरमा ने कहा—अनानास के लोभ से हाट में घुस गये थे?

शंकर दादा ने कहा—नहीं जी, एक आदमी आकर भेंट कर गया। लेकिन देखता हूं, हाट में घुसना ही अच्छा था। आदर करके सम्भव था, वहां से कोई गाड़ी या पालकी पर सवार कराके थाने पहुंचा देता; तुम लोगों की खुशामद न करनी पड़ती।

इसके बाद व्यस्त होकर बोले—तुम लोग थाने पहुंचाने का उद्योग नहीं करते, यह अच्छी बात नहीं। मुझे रखने में विपत्ति है जानती हो?

सुरमा ने कहा—राम कहो, यह क्या मैं जानती नहीं! देखिएगा थाना यहीं आकर हाजिर होगा। (शंकर दादा के माथे पर हाथ रखकर) लेकिन अब की ज्वर बिल्कुल छोड़ गया है।

शंकर दादा ने कहा—मगर ममता छोड़ न सकेगा, फिर आवेगा। सच सुरमा, क्या बताऊं आज कैसा अच्छा लग रहा है। लेकिन इसी-लिए जो कहो कि मरने को डरता हूं, यह बात नहीं है। मौत को मैं

पर्वाह नहीं करता। लोग तो मरकर भूत होते हैं, मैंने जीते-जी ही भूत बनने का खूब अभ्यास कर लिया है। मरने पर किसी तरह की असुविधा नहीं होगी। तुम लोग दिन की बेला चलते-फिरते हो, मैं घूमता था रात के अंधेरे में। बोलो, भूत का सगोत्र हुआ कि नहीं? उस आदमी ने भूत को अनानास दिया था, मनुष्य के मांगने से कहीं मनुष्य सहज में देता है!

अनानास का क़िस्सा कहते समय शंकर दादा तो हंसी से लोटपोट ही हो गये। बोले—उस समय कैसा घनघोर अंधेरा था! कृष्ण पक्ष की रात थी। ऐसे ही दिन तो हम लोग मज़े में निकलते घूमते हैं।

आगे का वर्णन मेरे शब्दों में सुनिए। शंकर दादा पाट के खेत से निकलकर रास्ते के ऊपर धीरे-धीरे चहलकदमी कर रहे थे। इस तरह मसान घाट के पास पहुंच गये। रास्ते से कुछ फ़ासले पर चर * के किनारे मसान है। एक मुर्दा जल रहा था। रास्ते के किनारे एक पुरानी नाव मरम्मत के लिए उल्टी रखी थी। श्मशान-वैराग्य जैसी कोई बात हुई शायद—बस शंकर दादा उसी नाव के ऊपर चुपचाप बैठकर मुर्दे का जलना देखने लगे। चिता के आसपास कोई आदमी न था। उस तरफ़ मसान के आम के पेड़ के नीचे कई आदमी बैठे थे। कुछ लोग नारियल के हुक्के में तमाखू पी रहे थे। आपस में बातचीत भी करते जाते थे। उनके बोलने का शब्द कुछ-कुछ सुनाई पड़ रहा था। बाज़ार करके जाने-वाले भी सब निकल गये थे। केवल कई आदमियों का एक दल किसी कारण से पिछड़ गया था। वे ही लोग तेज चाल से चले आ रहे थे। चिता देखकर उनमें से एक आदमी ने कहा—यह मुर्दा मोचीपाड़ा से

---

* नदी के भीतर बहाव से आई हुई बालू जमा होते-होते जो स्थल भाग निकल आता है, उसे चर कहते हैं। —अनुवादक

आया होगा। सारा मोहल्ला साफ़ हो गया जी! हैजा माई रोज़ तीन-चार की भेंट लेती हैं।

उनमें से दूसरे आदमी ने कहा--गिनकर देख तो रे—हम लोगों में से जान पड़ता है, आदमी कम होते जाते हैं!

तीसरा बोला--अरे बढ़े नहीं, इसी पर अच्छी तरह नजर रखना। बीच-बीच में मरे भूत भी पीछा करते हैं कि नहीं!

इसके बाद बहुत ही घबराई हुई आवाज़ सुन पड़ी—सचमुच हिसाब ठीक नहीं बैठता। ग्यारह ही आदमी हैं रे!

तीन बार आदमी गिने गये।

वही तो! वही तो!--खूब गड़बड़ मची। अन्त को एक आदमी ने कहा—दुर बेवक़ूफ़ो, अपने को छोड़कर सबको गिनते हो रे!

लेकिन फिर भी लोग सिर पर पैर रखकर भागने लगे। शंकर दादा अंधकार में किसी को न देख पाकर भी सबकी आहट पा रहे थे। हरएक दूसरे को ढकेल कर आगे जाना चाहता था। मसान की इस जगह पर कोई पीछे न रहना चाहता था। शंकर दादा का बचपन जग पड़ा। इसके सिवा भूख भी बड़ी लगी थी। उन्होंने नक्की सुर में कहा--मुझे कुछ दिये जा। मैं खाऊंगा।

बस, शोर-गुल, चीत्कार, भगदड़ मच गई। एक दूसरे पर गिरने लगे सब। गठरियां, झव्वे ज़मीन पर गिर पड़े--उनका सामान इधर-उधर बिखर गया। मसान में जो मुर्दा जलाने आये थे और आम के नीचे उधर बैठे थे, वे "क्या है? क्या है?" कहकर इसी तरफ़ दौड़ पड़े।

"नाः, यहां ठहरने नहीं दिया" कहकर शंकर दादा नाव के ऊपर से छलांग मारकर लंबे पड़े। पैर में अनानास ठुकराया। बेफ़सल का फल, कोई बड़े शौक से खरीदकर लाया था। उस दिन पाट के खेत के भीतर

नारियल के पत्तों की गद्दी पर बैठकर शंकर दादा का अनानास-भोजन होने लगा।

उसी दिन विनय आया। बैठते ही उसने पूछा—मुझे क्यों बुला भेजा है ? रामधन कहता था, कोई बड़ा जरूरी मामला है।

सुरमा ने कहा—यह मेरे दादा हैं। इनसे तुम्हारा आलाप-परिचय करा दूं।

विनय ने जल्दी से अपना हाथ शंकर दादा की ओर बढ़ा दिया।

सुरमा ने कहा—यह नहीं। वही जो अतिआदरणीय, सबसे बड़े नमस्य के लिए आप लोगों का एक मिलिटरी सलाम है, वह कीजिए। मेरे दादा क्या साधारण आदमी हैं ?

शंकर दादा ने बिगड़कर कहा—फिर वही !

विनय ने आंख के इशारे से सुरमा से परिचय पूछा।

शंकर दादा चटपट कह उठे—विश्वास न कीजिएगा; ये सब निन्दकों की बातें हैं। साधारण मनुष्य के सिवा मैं और कुछ नहीं हूं। मेरा नाम शंकर सरकार है। अपने को पकड़ा देने के लिए छटपटाता घूम रहा हूं।

विनय विस्मय से अवाक् हो रहा। उसके बाद हंसकर बोला—अगर यही बात है तो देखता हूं, मेरे भाग्य में तरक्की, पद की उन्नति बदी है।

आभा से नहीं रहा गया। उसने विनय के कानों में कहा—खूब—खू-ऊ-ब ! खूब समझ-बूझकर हिसाब करके चलो, रांगा दीदी का जूड़े समेत सिर लुढ़कते-लुढ़कते तुम्हारे श्रीचरण युगल के नीचे जा पड़ेगा।

विनय ने कहा—लेकिन विश्वास नहीं होता शंकर दादा ! —आपकी ऐसी सुबुद्धि—पश्चात्ताप है क्या ?

"पश्चात्ताप ?"—रोगी अशक्त शंकर दादा की आंखें जल उठीं—बोले—पाप करने से पश्चात्ताप होता है—मैंने पाप तो कोई किया नहीं !

प्रबल खांसी ने आकर रोक दिया। सुरमा दौड़ आकर हवा करने लगी। बहुत देर बाद खांसी थमी। उस समय उनकी सारी देह पसीने से भीग गई थी।

सुरमा ने व्याकुल कण्ठ से कहा—विनय बाबू, मेरे दादा विश्राम करना चाहते हैं। कल तो आप कलकते जा रहे हैं, इनको लिये जाइए। तो यह बिना विघ्न-बाधा के जा सकेंगे। यह आप सहज में कर सकेंगे।

विनय ने कहा—यह कर सकता हूं; लेकिन यह उचित न होगा। फिर जब यह आप ही जेल जाना चाहते हैं—

सुरमा ने नाराज़ होकर कहा—लेकिन हम तो नहीं जाना चाहते। उसका बिगड़ना देखकर शंकर दादा हंसने लगे। शान्त कंठ से बोले—इधर देखो बहन, तुम बेकार ही झगड़ा कर रही हो। क्या अब एक-दो शंकर के लिए व्यस्त होने का दिन है? वीर-पूजा तब तक चलती है, जब तक एक-आध आदमी को अलग करके वेदी के ऊपर बिठाया जाता है। इस समय इस तरह के शंकर सरकार घर-घर हो गये हैं! ठग छांटने में गांव उजाड़वाली कहावत हो जायगी।

विनय की ओर देखकर कहने लगे—बहुत सोच-समझकर यह विचार किया गया है विनय बाबू। निकम्मा हो गया हूं, कोई काम नहीं हो सकता; अब सरकार बहादुर की गर्दन पर सवार हो जाना ही अच्छा है। खा-पीकर मौज से ये कई दिन मजे से बिता दिये जायंगे।

सुरमा का क्रोध बढ़ गया। बोली—जेलखाना क्या पिंजरापोल है?

शंकर दादा ने कहा—ठीक वही है। जो बैल हल नहीं चला पाता, वह किसी दिन नहीं चला पावेगा; उसे पिंजरापोल में ही देना होता है। इस रोगी देह को लेकर मैं दूसरे के कंधे पर सवार किस बेशर्मी से होऊं बहन?

सुरमा ने कहा---विनय बाबू, आपके ऊपरवाले अधिकारी समूचे मनुष्य को चाहते हैं, केवल ये थोड़े से हाड़ कभी नहीं निश्चय। इसके सिवा आप तो कहते हैं, इन लोगों पर अभियोग कुछ नहीं है।

"यह ठीक है!" कहकर विनय सोचने लगा। अंत को बोला---खैर, जब आप कहती हैं तो यही होगा।

सुरमा ने कहा---आप समझ देखिए। बराहनगर में उनकी मां रहती हैं। हम भी यहां से लौटे जाते हैं, और कितने दिन यहां रहेंगे? और भी भाई बंद हैं। शंकर दादा के लिए न सही, वह अपनी मा के अकेले लड़के हैं---मा की बात तो सोचनी होगी!

विनय के चले जाने पर शंकर दादा ने कहा---अन्त को घर ही भेजा?---आज अभी तक ज्वर नहीं आया; आज तबियत खासी लग रही है!---अच्छा आजकल इसराज बजाती हो सुरमा?

सुरमा ने कहा---क्यों न बजाऊंगी? क्या आपका डर है? दिन-रात बजाती हूं।

शंकर दादा इस झूठ पर मन ही मन हंसने लगे। बोले---सुरमा, एक दिन तुम्हारी उंगली में मैंने आलपिन घुसेड़ दी थी। उस समय कैसा पागल हो गया था! वह सब भूल गई हो---क्यों?

सुरमा झनककर कह उठी---हां-हां, भूल नहीं गई तो और क्या! यह क्या आप लोग हैं कि कांटे का दाग़ जीवन भर नहीं मिटता?

सुरमा के दोनों होठ थर-थर कांप उठे, वह मुंह फेरकर अपने हृदय की व्यथा छिपाने की चेष्टा करने लगी?

शंकर दादा ने फिर पूछा---ब्याह हो गया है क्या?

सुरमा ने कहा---क्यों न होगा, ज़रा सुनूं। हम तो सन्यासी फ़कीर नहीं हैं।

आभा ने कहा—हुआ अभी तक नहीं, होगा। २७ अग्रहन (बंगला सन् की गणना से) को इन्हीं विनय दादा के साथ होगा। अवश्य अभी पक्का नहीं हुआ।

शंकर दादा बेहद प्रसन्न हो उठे। बोले—अच्छा, अच्छा! लेकिन मुझे न्योता देना न भूलना! निश्चय ही कलकत्ते में होगा। संदेश, रसगुल्ला, चाप-कटलेट, यह सब न जाने कितने दिन से नहीं खाया।

सुरमा अपने को संभालने में असमर्थ होकर भाग खड़ी हुई।

वही पुराना घर, पुराना तखत, गली के किनारे पुरानी खिड़की सब वही था। हम दल के सभी आदमी फिर आकर जमा थे—हिरण्मय, अकबरअली, नवीन, सभी। सुरमा रोज कम से कम एक बार आकर देख जाती है।

सबेरे के समय कोई न था। अकेला मैं सिरहाने बैठा हवा कर रहा था। शंकर दादा बाहर की ओर मुंह किये लेटे थे। दबे पैरों सुरमा कमरे में दाखिल हुई।

शंकर दादा ने उसे देखकर कहा—आओ बहन, आओ—मनुष्य की सूरत देखे बिना अच्छा नहीं लगता। जहां जाऊंगा, वहां मनुष्य हैं कि नहीं, यही सोचता हूं—उंहूं, बिछौने के ऊपर नहीं, कुर्सी खींचकर उस पर बैठो।

सुरमा सिर झुकाये बोली—मैं आपको न्योता देने आई हूं दादा।

शंकर दादा ने कहा—ठीक है, सत्ताईस अगहन का दिन आ गया। मेरे कलेंडर का महीना बदला नहीं गया। पीली पीली गणेश-मार्का दो चिट्ठियां और आई हैं। उस सफेद घर में मण्डप (ब्याह का) बनाया जा रहा है। खिड़की पर बैठे-बैठे देखता हूं।

हँसते मुख से सुरमा की ओर देखकर प्रश्न किया—हां बहन, तुम

लोगों ने दल बांधकर जैसे षड्यन्त्र किया है कि सत्ताईस अगहन के बाद कोई क्वांरा-क्वारी न रहेगा ?

सुरमा ने कहा——लेकिन आपको आना पड़ेगा।

शंकर दादा ने कहा——मैं ? डाक्टर ने क्या कहा है, तुमने नहीं सुना ? ब्याह का घर है, तुम्हारे आत्मीय कुटुंब आवेंगे। उनके बीच में तो मेरा जाना हो नहीं सकता। रोग तो साधारण नहीं, एकदम टी० बी० है। मैं यहीं से आशीर्वाद करूंगा।

सुरमा ने कहा—ना, बहन के पास भाई जायगा ही; आत्मीय-कुटुंब को न पसंद हो तो वे न आवेंगे। मैं सावधानी से ले जाऊंगी, खूब यत्न से रखूंगी। दो दिन पहले ही आपको चलना होगा।

शंकर दादा ने कहा——तुम्हारा इसराज तभी से यहां पड़ा है सुरमा। उस पर धूल-गर्दा जम गई है—ले जाओ। क्यों न बजाओगी, क्या हुआ ? खासकर इस हंसी खुशी के समय।

भरे हुए गले से सुरमा ने कहा——ले जाऊंगी दादा, आदमी भेज दूंगी।

शंकर दादा ने कहा—हां यही करना बहन। तभी से तुम मुझसे नाराज हो बहन ? अरे मैं तो एक पागल हूं।

सुरमा के जाने के बाद और भी कुछ देर तक उसके कपड़ों के एसेन्स की मादक सुगंध से कमरे की हवा सुवासित रही।

मा ने आकर कहा——इस तरह चुपचाप क्यों लेटा है बेटा ? तनिक घूमना-फिरना तो अच्छा है।

शंकर दादा ने कहा——घूमना अच्छा नहीं लगता मा।

मेरी ओर ताक कर मा ने कहा—बेटा मुन्नू, वही पहले की तरह उसे खींच-खाच कर घर के ऊपर की अंटिया पर ले जा कर क्यों नहीं बैठते ? रात-दिन पड़ा रहता है। देख-देख कर मेरा तो दम घुटने लगता है।

शंकर दादा ने कहा—अभ्यास कर रखो मा। छत पर बैठ कर सलाह-मशवरा करना तो कितने ही दिनों तक चलता रहा—अब बन्द हो गया। मुझे कोई रोक नहीं सका,—तुम नहीं, तुम्हारे और-और लड़के नहीं ; डाक्टर लोग भी नहीं।

मा उनकी ओर ताक रही हैं, मैं भी देख रहा हूं। मुंह कैसा पीला-पीला दिखाई पड़ रहा है—स्थिर चमक से शून्य दोनों आंखें किसी नई दुनिया की खोज में—किसी दुर्निरीक्ष्य (न दिखाई पड़ने वाले) लोक की ओर लगी हुई हैं।

जैसे हमारे शंकर दादा आंखें गड़ा कर जीवन के सुन्दर वैचित्र्य को देख रहे हैं—कितनी आशा, कितना आनन्द खिले हुए फूलों की तरह धरती की मिट्टी पर झर-झर पड़ता है। कितनी धूप, प्रकाश, मेघमंडित आकाश के कितने सपने इस मनुष्य की आखों में झलक रहे हैं! मृत्यु के यात्री शंकर दादा शीतल कुहासे से ढके हुए रास्ते से दाहना हाथ उठा कर आनेवाले दिन की सुखी धरती को जैसे नमस्कार कर रहे हैं।

सुरमा ब्याह के दिन किसे लेने आती? शंकर दादा तो उसके तीन-चार दिन पहले ही से एकदम संज्ञाहीन—बेहोश थे। डाक्टर, मा और हम लोग सब दिन-रात बारी-बारी से उनके पास रहते हैं। संध्या के समय एक बार शंकर दादा को होश आ गया, ज्ञान भी लौट आया।

उत्तेजित कंठ से पूछा—तुम लोग यहां कौन-कौन हो?

मैंने कहा—हम सभी हैं।

उन्हों ने फिर पूछा—सुरमा इसराज लाई हो?

कौन जवाब दे? आज सुरमा के ब्याह का दिन है—उसके पास क्या ख़बर भेजी जा सकती है? मुझे फ़ौरन् पहले के उस दिन की याद आ गई। उस दिन भी तीसरे पहर हम आठ आदमी वहां थे, आज भी सब

आठों हैं, इसराज भी है, पर सुरमा नहीं है। शंकर दादा चिल्ला उठे—सुरमा, आर यू देयर? स्पीक। (तुम यहां हो? बोलो।)

झनाझन इसराज बज उठी। तीव्रगति से इसराज पर मैं उंगली चला रहा हूं। और कभी नहीं बजाया। अभ्यास न होने के कारण उंगली जैसे कटी जा रही है, तो भी बजाना होगा। अनेक कठिन-कठिन काम किये हैं, पर जीवन में आज का यह बजाना सबसे कठिन काम है—कर्त्तव्य है। सुर की झनकार घर में भर गई। मृत्यु-पथ के यात्री के मुंह में हंसी फूट उठी।

शंकर दादा बार-बार कहने लगे—गो आन गो आन सुरमा। शान्त मुख से मा गरम पानी का सेंक दे रही हैं। सब लोग चुपचाप ज़रूरत का सामान जुटा रहे हैं—काम कर रहे हैं। इसके बाद गम्भीर कंठ से डाक्टर कह उठे—स्टाप (बन्द करो)—

मैंने बजाना रोक दिया।

डाक्टर ने कहा—अब बजाने की ज़रूरत नहीं। वह नहीं सुनेंगे। सुननेवाला चला गया।

डाक्टर उस तरफ़ साबुन से हाथ धोने गये। इसराज को गिलाफ़ में भरकर धीरे-धीरे शंकर दादा के सिरहाने आकर बैठ गया। घर में बुझे-बुझे प्रकाश में जान पड़ा, केवल सुरमा ही नहीं, आनन्द किशोर, निरुपमा, जगत् दत्त, सरोज पाकड़ाशी, हिरण्मय, रानी—हम सब एक जगह बैठे हुए हैं, हमारे दल के सभी लोग आये हैं।

*   *   *   *

मल्लिका

मल्लिका का वृत्तान्त कह कर इस प्रसंग को समाप्त करूं।

स्वदेशी के जमाने में स्कूल में पढ़ता था। बाबूजी तो नौकरी छोड़ कर जैसे पागल हो उठे। वह हाल शुरू में ही कह चुका हूं। झंडा उठाकर, दल बांधकर, इस गांव से उस गांव में वह सभा करने जाते थे, वक्तृता देते थे। घर का सब काम यदु देखता था, असल मालिक जैसे वही हो।

एक दिन खूब सवेरे पिताजी ने मुझे सोते से उठाया। यदु और घर के और भी कई आदमी पहले ही से खड़े थे। हल्दी से रंगे सूत का एक-एक टुकड़ा लेकर उन्होंने सबके हाथ में एक-एक करके बांध दिया। बोले—तुममें से कोई मेरे हाथ में भी राखी बांध दो। यदु, तुम्हीं बांधो। कलम के खोंचे से उन लोगों ने देश को दो टुकड़े कर दिया है, तो इससे हम सब आदमी अलग हो जायंगे? कभी नहीं।

सवेरे से दोपहर तक लोग गले मिलते रहे। लेकिन यदु इससे बिल्कुल ही प्रसन्न नहीं था। उसने कहा—देखो भैया, नौकरी छोड़कर यह सब तो करते घूमते हो; इधर जो कुछ थोड़ा-बहुत है—वह भी जा रहा है। असामियों से कुछ वसूल नहीं होता, जमीन जायदाद इस तरह चूल्हे में जायगी। इस सब हंगामे की भला जरूरत क्या है?

पिताजी ने कहा—कोई जरूरत नहीं। अच्छा बता, तेरे घर के अगर कोई दो हिस्से करके कहे कि इधर तुम रहो और उधर मामी रहेगी तो तू चुप रह सकता है? हम आपस में झगड़ा करें, मेल करें, आप करेंगे—तुम कौन हो जी जो बाहर से मुरब्बीपना करते हो! हम यही तो उनसे कहते हैं।

इसके बहुत दिन बाद जब और बड़ा हुआ, तब पिताजी की वक्तृता सुनी है। उसकी एक-एक बात आज भी जैसे गाने की तरह कानों में गूंजा रही है। जैसे मनुष्य की विजय-घोषणा—आघात-अपमान के भीतर भी सिर ऊंचा करके घूमने का संकल्प। इसी तरह की सब बातें।

इसके बाद मल्लिका ब्याह कर आई। सोलह-सत्रह साल की एक ना जानी न पहचानी लड़की। सारे अंगों में भरा हुआ रूप और हंसता हुआ चेहरा, जी खोल कर हंसी। वह हंसी कारण अकारण झरने के पानी की तरह सदा झरती रहती थी। नई लड़की पाकर पिताजी का भी बाहर-बाहर घूमना थोड़ा कम हो गया।

एक बार राखी-बन्धन के दिन सवेरे-सवेरे स्नान करके हम सब आकर खड़े हुए थे।

मैंने कहा—क्यों बाबूजी, राखी न बांधोगे?

पिताजी ने हंसकर कहा—मन सबके आपस में मिल गये हैं कि नहीं, इसी से टुकड़े हुआ देश फिर एक हो गया है। अब राखी बांधने की जरूरत नहीं है।

जरा चुप रहकर फिर कहने लगे—कालिज के मैकलीन साहब ने शंकर का हाल सुनकर कहा था—फूल जैसी कोमल देह, लेकिन भीतर जैसे इस्पात का बना है। ये सब छोकरे इस देश में कहां से आये मिस्टर राय? इस पर मैंने जवाब दिया—साहब, यह रॉयल-बेंगल-टाइगर का देश है। दुनिया में इनकी जोड़ी नहीं है।

आनन्द और गौरव से पिताजी का गोरा मुंह चमक उठा।

इसके बाद पिताजी का स्वर्गवास हो गया। क़ानून पढ़ने का नाम करके तब कलकत्ते में रहता था। लेकिन आईन पढ़ने की बात बिल्कुल झूठ—कोरा बहाना थी—कालिज की तरफ़ रुख ही नहीं किया। किन्तु

मल्लिका का नशा सवार न हो, यह बात न थी। 'स्वदेशी' का काम करता था, इसलिए क्या मनुष्य न था? हर सनीचर को अक्सर घर आ जाता था। और भी सुभीता यह हुआ कि मुझे दल का एक ख़ास काम सौंपा गया। काम हमारी ही तरफ़ था।

मेरे रंगढंग यदु को अच्छे नहीं लगते थे। वह आंखें चढ़ाकर ग़ुस्से से मेरी ओर ताकता था। कैफ़ियत के तौर पर मैं उससे कहता था—यदु भाई, अकेले तू किधर-किधर सँभालेगा? मुझमें भी तो कुछ बुद्धि और समझ है। इसी से आता-जाता हूं।

लट्ठगंवार यदु ऐसी बातों में बहलता नहीं। गर्दन हिलाकर सीधा जवाब देता—ना भैया, मुझे आराम या मदद की जरूरत नहीं है। इस तरह स्कूल से भागना छोड़ दो। पढ़-लिखकर आदमी बनकर आओ—तब मुझे एकदम छुट्टी दे देना।

लेकिन आना बन्द करने का उपाय न था, इसलिए यथासम्भव उससे कतराता रहता था।

एक बार सोमवार के दिन सवेरे ठीक़ कलकत्ते लौटते समय बादल घिर आये—आंधी पानी का आना असम्भव न था। स्टेशन का रास्ता लगभग चार मील का था। ऐसी हालत में कपड़े-लत्ते भीग जाने पर कालिज जाना तो चूल्हे में जाय, कोई लम्बी बीमारी होने का डर था।

किन्तु यदु यह सब सुनने-समझने को तैयार न था। दोपहर को भोजन के समय उसके सामने मैं पड़ गया। यदु ने कहा—अब की क्या पूरी तौर से स्कूल से इस्तीफ़ा दे आये भाई साहब? यह अच्छा किया। अपना काम-काज आप देखो, मैं चला जाऊं।

अपराधी की तरह मैंने कहा—अच्छा ऐसी हालत में भला कैसे जाऊं, तुम्हीं समझकर देखो—

यदु ने कहा—ओह, जान पड़ता है, अजायबघर का पिंजड़ा तोड़कर बाघ निकल पड़ा है? शहर में अब कोई जा नहीं सकता।

मुझे भी गुस्सा आ गया। मैंने कहा—हां, बाघ छूट गये हैं। उनमें से दो निकलकर इस गांव में घुस आये हैं। इधर तू सवेरे से ताक लगाये हुए है और उधर घर के भीतर एक नम्बर वह शिस्त लगाये बैठी है।

यदु का मुंह हंसी से भर गया। बोला—तब तुम्हीं देखो भैया, मेरी इन छोटी-सी बहूरानी के खाली विद्या ही नहीं, बुद्धि भी कितनी है! (छाती ठोककर गर्व के साथ) यह मैं ही इन्हें खोजकर लाया था—भगवान् ने मेरा मान रखा।

मैंने कहा—तेरे और तेरी बहूरानी के मारे मैं देशान्तर में चला जाऊंगा, बिल्कुल ही घर न आऊंगा।

यदु डरता नहीं, बड़े आनन्द से कहने लगा—यही तो! बाप के बेटा हो भैया। मालिक ही कितने दिन घर में रहते थे। उन्होंने कितनी विद्या सीखी थी। इसी से तो अन्त में न जाने कहां-कहां के दुनिया भर के आदमी उनके पास आते और उनकी बातें सुनने के लिए पकड़ ले जाते थे। हूँ हूँ—घर में बैठने से तो तुम को सरिश्ते में बैठना होगा—हाट-बाजार करनी होगी—

इसी समय एक कांड हो गया। यदु को मलेरिया हो गया था। दस बारह दिन भुगतकर उसने वैसे ही अन्नत-पथ्य पाया था। फ़सल काटने का समय था—देखे बिना काम न चलता था, इसीलिए वह खेतों की तरफ़ देखभाल करने जा रहा था। थाने के सामने होकर ही राह थी। उसने देखा, गोकुल चौधरी और उसका भतीजा मुंह सुखाये थाने में बैठे हैं। उनके सामने कुर्सी पर दारोग़ा साहब विराजमान हैं। दोनों आदमी दारोग़ा की चिरौरी-विनती कर रहे थे।

गोकुल नाते में यदु का साढ़ू लगता था। यदु की पत्नी की फुफेरी बहन उसे ब्याही थी। उससे मेल-जोल और स्नेह भी था। उसने हाथ के इशारे से यदु को अपने पास बुलाया। यदु ने बरामदे में जाकर धीरे से पूछा—सवेरे-सवेरे इस दरबार में—मामला क्या है रे?

गोकुल ने बताया—कल रात को मेरे घर में चोरी हो गई है। दाहनी तरफ़ की कोठरी में सेन्ध काटी गई है और रसोई-घर का बेड़ा भी डेढ़-दो हाथ हटा दिया गया है। घर में पीतल-कांसे का एक टुकड़ा भी नहीं छोड़ा। आज केले के पत्ते पर खाना होगा।

दारोग़ा ने गर्दन हिलाकर कहा—चाहे जो कहो चौधरी, मैंने हिसाब लगाकर देखा है, पांच रुपए से कम में किसी तरह काम न होगा। अभी न दे सको तो दोपहर के इधर ही जमा कर जाओ—निश्चिन्त होकर जाओ, सन्ध्या तक हम लोग जरूर मौक़े पर जांच करने आ जायेंगे।

गोकुल की आंखों में आंसू भर आये। उसने कहा—हजूर, आप विश्वास नहीं करते, फिर मैं क्या कहूं! घर में एक पैसा तक चोर नहीं छोड़ गये। फिर यदु की ओर ताककर कहने लगा—यहां इजहार देने आकर मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। दारोग़ा बाबू के ख़ुद गये बिना कुछ न होगा। लेकिन उनकी पालकी का किराया कहां से लाऊं और कानिस्टिबिल की बारबरदारी कहां से दूँ—इतने रुपए इस समय कहां से जुटाऊं।

पिताजी से यदु झगड़ा किया करता था, तो भी उन्हीं के अन्न से पला था। कौन जानता था, भीतर ही भीतर उनकी विद्या सीख ली है! यदु का मुख क्रोध से काला हो उठा। उसने उग्र स्वर में कहा—क्यों, तेरे घर में गऊ-बैल नहीं हैं?

फिर दारोगा की तरफ़ ताककर कहा—आप ठीक कहते हैं। चोर

इतना उठा ले गये, और हुजूर के लिए कुछ नहीं है ? कोरा जवाब ?—उनके गये बिना होगा कैसे गोकुल ? जा, गऊ-बैल गिरों रखकर या एक-आध बेचकर हुजूर के राहखर्च का जोगाड़ कर !

दारोगा इस व्यंग्य से आगबबूला हो उठे। बोले—तुम कौन हो जी जो फ़िजूल की बातें करने आये हो ? निकल जाओ।—ए महादेवसिंह, निकाल दो उसको !

यदु उठकर खड़ा हो गया और क्रोध से कांपता हुआ बोला—हम लोग आप ही जाते हैं। सीधे सदर कोतवाली में चले जायंगे। हमें उधर का रास्ता मालूम है। बोलो भाई, बन्दे मातरम् !

दारोगा चिल्लाये—सदर कोतवाली में हम ही भेजेंगे, तुम लोगों को ढूंढते-ढूंढते जाना न पड़ेगा। पकड़ो सालों को—

दोपहर के बाद गोकुल ने आकर चुपके-चुपके मल्लिका से कहा—यदु को थाने में बेढब मार पड़ी है। मारपीटकर अब अतुल डाक्टर के दर-वाज़े के मैदान में देवदार के पेड़ में उसे बांध रखा है।

अतुल डाक्टर का घर थाने से लगा हुआ है। डाक्टर के साथ दारोगा का बड़ा मेल है—वही जिसे 'दांत काटी रोटी' कहा जाता है और बुरे लोग तो यह भी कहते हैं कि दोस्ती बिल्कुल निष्काम या निःस्वार्थ नहीं है। मल्लिका तो सुनकर भौचक्की रह गई। मोहल्ले के दो-चार आद-मियों की कोशिश से यदु से मिलने का बन्दोबस्त हुआ। मल्लिका चादर से सारी देह ढंककर थाने चली, साथ में यदु की लड़की मानी और एक नाते में जेठ लगनेवाला लड़का था। असामी अर्थात् यदु को उस समय हवालात में बन्द कर दिया गया था। पीछे उत्तर के खुले बरामदे में मल्लिका वग़ैरह बैठे।

हथकड़ी पहने यदु का चेहरा देखकर मल्लिका की आंखों में आंसू आ

गये। उसने कहा—यह क्या कर बैठे चौधरी दद्दू?

स्वर्गीय मालिक के शब्द ही यदु रटे हुए की तरह कह गया—क्यों, अन्याय क्या किया? बन्दे मातरम् कहा—माता को प्रणाम करके उसे पुकारा—लड़कों का मुंह दबाकर उन्हें पुकारने न देंगे? यह हम मानेंगे क्यों?

थाने का दफ़ादार करालीचरण इसी गांव का बाशिन्दा था—शंकर बाबू के घर के बाहरी पोखर के किनारे उसका घर है। उसे बुला भेजकर मल्लिका ने कहा—चौधरी दद्द को अबकी छोड़ दो। अभी-अभी बुखार से उठे हैं, दुर्बल देह है—उस पर दोपहर को उन्होंने कुछ खाया नहीं—

करालीचरण ने कहा—दिमाग़ करके नहीं खाया। चिउड़े दिये गये, उन्हें उठाकर फेंक दिया। समझो तो मा, थाने पर आकर हल्ला किया--उसकी हिम्मत कितनी है! बड़े दारोगा सदर में उसका चालान करेंगे। कुछ दिन जेल में चक्की पीस आवे, दिमाग़ ठंडा हो जायगा।

मल्लिका ने विस्मित होकर कहा—बन्दे मातरम् कहने के लिए जेल?

कराली हंस उठा। बोला—क्या जानें किस लिए!—तुम मा, घर जाओ। उसे छोड़ा न जायगा।

यदु ने भी कहा—घर जाओ बहू रानी। ये क्या सहज में छोड़नेवाले आदमी हैं? दोपहर को कुछ गवाहों को बुलाकर न जाने क्या-क्या सिखाया-पढ़ाया जा रहा था। थोड़ा-थोड़ा कानों में पड़ गया। यही कि मैंने सब भयानक काम किये हैं। तुम भैया को चिट्ठी लिख दो। पांच-छः महीने में ही लौट आऊंगा जेल से—कोई चिन्ता की बात नहीं है।

मल्लिका न आंखें पोंछकर कहा—कोतवाली और सदर कचहरी तो

यहां से दस-बारह कोस दूर है। चौधरी दद्दू इस रोगी शरीर से इतनी दूर कैसे जायंगे?

कराली हंसने लगा। बोला—असामी के लिए क्या अरबी घोड़े की सवारी का बन्दोबस्त होगा मा? यहीं चांदनी निकलने पर रवाना किया जायगा, साथ में चार-पांच सिपाही रहेंगे। पहुंचने में दो पहर भी नहीं लगेंगे। दारोगा साहब सबेरे पालकी पर रवाना होंगे—बन्दोबस्त हो गया है।

मल्लिका ने दृढ़ स्वर में कहा—मेरे चौधरी दद्द भी पालकी पर जायंगे।

कराली खीसें निकालकर हंसने लगा। बोला—सोलह कहारों की?

मल्लिका ने कहा—दूर का रास्ता है, कहार कुछ अधिक जरूर रहेंगे।

मल्लिका का मुंह देखकर करालीचरण की हंसी रुक गई। आगे हंसते रहने का उसे साहस नहीं हुआ। बोला—अच्छा मा, दारोगा बाबू से जाकर कहता हूं।

मल्लिका ने कहा—हां, जाकर कहो। बीमार आदमी को बारह कोस घसीटते ले जाने से उसकी देह में जो थोड़े से हाड़ हैं, वे समूचे नहीं रहेंगे। यह न होगा। तुम जाकर कहो, पालकी का खर्च मैं दूंगी।

रात को थाने से खबर आई कि पालकी के बारे में दारोगा साहब को कोई आपत्ति नहीं है—सबेरे ही रवाना होगा। मगर बारह कहारों की मजदूरी चौबीस रुपए अभी भेज देना चाहिए।

गंवईगांव में इतने रुपए हालहर्जा नहीं मिल सकते। मल्लिका ने अपने हाथ का एक कड़ा उतारकर यदु की लड़की को दिया। कहा—पोद्दार (सर्राफ़) की दूकान में दौड़कर जा तो मानी, गिरों रखकर या

बेचकर, जिस तरह हो, रुपए ले आ।

कड़ा हाथ में लेकर मानी कुछ इधर-उधर करने लगी। मल्लिका ने डांटकर कहा—खड़ी क्या है री—आदमी से गहना क्या बड़ा है?

अवश्य नहीं है। कड़ा लेकर मानी चली गई। तब भी मल्लिका बहुत देर तक सुस्थिर नहीं हो सकी। यह कड़ा उसकी सास हाथ में पहनती थी—पुरानी चीज है। सास को उसने आंख से नहीं देखा। वह जब चिता पर लिटाई गईं तब उनके स्वामी ने निकालकर रख लिये थे। मल्लिका के आने पर उन्होंने उसे पहना दिये। अब वह जिस दिन चिता पर लेटेगी, उस दिन शायद और एक आदमी (अर्थात् मैं) आंखों में आंसू भरे उन्हें निकालकर रख देता और एक नववधू के लिए। किन्तु यह तो नहीं हुआ।

मेरे पास मल्लिका ने चिट्ठी लिखी। सब बातें खोलकर लिखी थीं उसमें। तीन दिन बाद मैं घर आ पहुंचा।

हाथ के नाखून खोंटते-खोंटते मल्लिका ने कहा—देखो, तुम नाराज होगे—जिद में आकर एक काम कर डाला है; सब तो लिखा, सिर्फ़ वही नहीं लिखा।

मैंने कहा—वह क्या?

मल्लिका ने बायां हाथ ऊंचा करके दिखाया।

मैंने हंसते हुए कहा—गहने का शोक हो रहा है?

आंसुओं से जड़ित स्वर में मल्लिका ने कहा—यह तो मेरे लिए हीरा-मानिक-कोहनूर से भी ज्यादा है, तुम तो जानते हो।—अच्छा, मैंने क्या बुरा नहीं किया?

मैंने कहा—जरूर, एक सौ बार—

मल्लिका का मुंह इतना-सा हो गया। बोली---बाबूजी जिन्दा होते तो कितना दुखी होते !

मैंने कहा---दुखी होते जरूर, लेकिन क्रोध नहीं करते; क्योंकि इसके सिवा और कोई उपाय न था।

बाबूजी की बात चलने पर गर्व से छाती फूल उठती है। स्वाधीनता हमने बहुत दिन से गंवा दी है, लेकिन हमारा मन आज भी नहीं मरा---यह केवल इसलिए कि इन समस्य के प्राणों की आग एक पुरुष से दूसरे पुरुष में प्रज्वलित होती जा रही है।

मैंने कहा---पिताजी जैसे आदमी थे उससे शायद कहते कि बहूरानी, तुमने यह क्या किया---मैं आदमियों के हाथ में पीली राखी बांधता फिरता था, तुमने एक हाथ का कड़ा उतारकर एक साथ मनुष्य के मन को राखी बांध दी !

मल्लिका थोड़ा लज्जित हो उठी। बोली---यह देखो, तो तुम्हारे कानों तक भी यह बात पहुंच गई। सचमुच इस तरफ़ मैं सबकी मा बन बैठी हूं।

मैंने कहा---वही तो कहता हूं, यह घोर अन्याय है---तुमने बहुत बुरा किया। मुझ बेचारे को कुछ ख़बर नहीं, कलकत्ते में बैठा पिनल कोड रट रहा हूं। अब राह चलते लोग उंगली उठाकर कहेंगे---यह मल्लिका मा का स्वामी जा रहा है। इसमें कहीं इज्ज़त रहती है ?

मल्लिका बच्चों की तरह ताली बजाकर नाच उठी। बोली---खूब हुआ ! अब तक तुम लोग सिर पर चढ़े रहते थे; अब से मेरे नाम से तुम्हारा परिचय होगा।

मैंने दृढ़ कंठ से कहा---इज्ज़त तो मैं अपनी बनाये ही रक्खूंगा।

मल्लिका ने कहा---क्या करोगे ?

मैंने कहा—तुम क्या समझती हो, अकेले तुम्हें दिमाग़ करने दूंगा? मैं भी तुम्हारे पास-पास रहूंगा। हज़ारों आदमियों के बीच ही अब से हमारा काम होगा।

प्यार से उसे मैंने अपने पास खींच लिया। कहा—बाबूजी के इस चित्र के सामने जैसे तुम वही एक छोटी सी बालिका हो, यह मेरी छाती से लगी हो, वैसे ही रोज़—हमेशा—बूढ़े होकर आखिरी सांस तक रहोगी। लोग कहेंगे—नीलकान्त राय का लड़का यह मानवेन्द्र राय है और यह राय-घराने की बहू मल्लिका है—क्यों, ठीक है न? पिताजी ने जो काम उठाया था, वह यहां के सभी आदमियों का काम है और मैं अकेला नहीं, दोनों जने मिलकर उसे पूरा करेंगे।

मल्लिका तद्गत भाव से एकटक पिताजी के चित्र की ओर देखती रही। उसके बाद हाथ छुड़ाकर मुझे साष्टांग प्रणाम करने चली। देखो तो तमाशा, औरतें इतनी भावुक होती हैं, इतने थोड़े में अभिभूत हो पड़ती हैं!

मैंने उसे बीच ही में पकड़कर हृदय से लगा लिया।

क्रोध के आवेश में मैं सीधा थाने पहुंचा। दारोगा से कहा—आप यहां नये आये हैं, जानते नहीं। यह चौधरी मेरे घर में रहता है; उसका बाप भी हमारे यहां काम करता था—

दारोगा ने खूब खातिर करके मुझे बिठाया। बोले—आप आ गये, अच्छा हुआ महाशय। हम लोगों को ही हो हल्ला करने की क्या गरज पड़ी है? लेकिन यह भी कहता हूं कि, बिल्कुल मामूली केस है—एक तरह से कुछ भी नहीं है। यहां तक क्या तूल पकड़ता? लेकिन वह जो कहते हैं "स्त्री बुद्धिः प्रलयंकरी"—स्त्री की बुद्धि! वे लोग असामी के लिए पालकी-कहारों का रुपए जुटा सकीं, लेकिन सिपाहियों के

लिए कुछ दे देतीं तो सब तभी रफ़ा-दफ़ा हो जाता। उसका आधा भी न खर्च पड़ता महाशय।

मैंने अनजान बनकर कहा——मामला क्या है, कहिए तो ?

दारोगा ने कहा——चींटी के पंख निकलते हैं साहब, देखते क्या हैं ? थाने में आकर चिल्ला गया बन्दे मातरम् और धमकाया भी ! यह सरकारी दफ्तर है, सरकार इन सबको ठीक करना जानती है, करेगी भी। लेकिन छोटी जाति की इस तरह हिम्मत बढ़ने पर भले आदमी कैसे टिकेंगे——जरा सोचिए तो ! अरे साहब, नीच जाति अगर दबकर नहीं रहेगी तो वे लोग भगवान् से कह-सुनकर हम-आप की तरह बांभन-कायथ क्यों नहीं पैदा हुए ?

मैंने कहा——मैं आपके पास भागवत की कथा सुनने नहीं आया दारोगा साहब ! आपने नीलकान्त राय का नाम जरूर सुना होगा। उन पर आप लोगों की नेक नजर तो थी ही, उस पर उन्हें छुआछूत और खाने-पीने का उतना विचार न होने के कारण समाज ने भी अलग कर रखा था। मैं उन्हीं का लड़का हूँ। यदु नमः शूद्र* होने पर भी मेरा बड़ा भाई है।

दारोगा ने कहा——ऐसा न होता तो क्या वह इस तरह सिर चढ़ता ! आप लोग देश को कहीं का न रखेंगे——उसका सत्यानास कर देंगे।

मैंने रूखी आवाज में कहा——जी नहीं, सत्यानास आप ही लोग करेंगे। केवल देश का नहीं, जिस सरकार का नमक खा रहे हैं. उसका भी। मैं साफ़-साफ़ कहता हूं, पान-वान खाने के लिए एक कौड़ी भी प्रत्याशा न कीजिएगा——यह झूठा मामला उठा लीजिए।

---

* बंगाल में नमः शूद्र एक सबसे अछूत जाति मानी जाती है।

——अनुवादक

दारोग़ा बिगड़ उठे—-झूठा कैसे ? डाक्टर बाबू के पेड़ से उसने नारियल चुराकर नहीं तोड़े ?

मैंने कहा—-नहीं। इसका कारण यह है कि अतुल डाक्टर के कोई नारियल का पेड़ ही नहीं है।

दारोग़ा ने कहा—है या नहीं, इसका विचार अदालत करेगी।

मैंने कहा—सो करेगी। लेकिन इस समय में भी कुछ किये जाऊं।

यह कहकर दारोग़ा के गले में जो कंफार्टर पड़ा था, क्रोध के आवेश में उसे पकड़कर एक झटका देकर ही फिर मैंने छोड़ दिया। मक्खी को मारने से लाभ क्या ?

इसके बाद एक धूम-सी मच गई। यदु छूट गया। लेकिन स्वदेशी आन्दोलन के बारे में बाबूजी की शोहरत और उसके साथ इस घटना को जोड़कर पिनलकोड की अनेक दफ़ाएं लगाकर उस बार मुझे सिर्फ़ डेढ़ साल के लिए जेल भेज दिया गया। उस जमाने के अखबारों में ये सब बातें छपी थीं। एक अखबार में मल्लिका के बारे में ही एक डेढ़-दो कालम का लेख निकला। उसमें लिखा था—मल्लिका जो फूल की तरह अपने स्निग्ध सौरभ से घर को सुवासित करती थीं, अभागे सन्तानों के कल्याण के लिए वही आज देश के आकाश में सूर्य की तरह उदय हुई हैं। अब अवश्य नव प्रभात का उदय हो रहा है—-इत्यादि। सब मिलाकर ऐसा कुछ हुआ कि जो कहार यदु को पालकी पर ले गये थे, उन्होंने एक दिन आप आकर पाई-पाई किराए की रक़म लौटा दी। सबकी युक्ति और सलाह से मल्लिका के कड़े बेचकर जो रुपए आये थे, उनसे हमारे घर की चौपाल में एक रात्रि-पाठशाला खोल दी गई। शंकर दादा की छत पर जैसे हम लोग अड्डा जमाते थे, कुछ-कुछ वैसी ही यह पाठशाला थी—-और क्या ! किसान लोग सन्ध्या के बाद किताब, स्लेट लेकर आते थे।

मल्लिका इन सब कामों में जैसे पागल होकर जुट गई। छोटे लड़के-लड़कियों को वह आप पढ़ाने लगी।

जेल से निकलने के दिन लड़के बाक़ायदा माला लेकर फाटक घेरे जमा थे। भीड़ ठेलकर मल्लिका और यदु आगे बढ़ने की हिम्मत न कर पा रहे थे। घर आकर दो दिन स्थिर होकर बैठने की भी फ़ुरसत लड़के नहीं देना चाहते। आज यहां सभा है, कल वहां बैठक है। सांस नहीं ले पाता। फिर पुलीस ने गिरफ्तार किया, बदस्तूर मामला मुक़दमा चला और सज़ा हो गई। अन्त को ऐसा हुआ कि अदालत में जाने की जरूरत नहीं हुई—नज़रबन्दी के कैम्प में सीधे भेज दिया गया। अब यह बात छिपी नहीं थी कि शंकर दादा के दल से मेरा सम्बन्ध है।

उस समय वीरभूमि जिले के एक गांव में मुझे रखा गया था। पुलीस दोनों वक़्त आकर तदारुक कर जाती थी। गांव के लोग मुझ से ईर्ष्या करने लगे। काम-काज कुछ नहीं करना पड़ता, मजे में अच्छा खाता-पीता हूं, हर वक़्त धुले-चिट्टे कपड़े पहनता हूं। बीच-बीच में अपने लिए सौदा खरीदने जाता हूं। मछुए से भाव पूछने पर अगर वह बारह आने बताता है तो ठन से पूरा रुपया ही उसके सामने फेंककर मछली उठा लेता हूं। वह आश्चर्य से अवाक् होकर मेरा मुंह ताकने लगता है।

एक दिन उस मछुए ने धीरे से मुझ से पूछा था कि क्या करने से इस तरह नजरबन्द हुआ जा सकता है, बताइए बाबू जी? बहुत पढ़ना-लिखना और विद्या सीखनी पड़ती है—क्यों न?

घर से चिट्ठी बीच-बीच में आती है। मल्लिका अपने बारे में कुछ नहीं लिखती—इसके सिवा सभी खबर देती है। मानी का ब्याह हो गया है; जमाई थोड़ा बहुत लिखा-पढ़ा है। तभी से वह यदु के घर में है; खेती-बारी वही देखता है। यदु को बार-बार मना करता है—अब उसे

वह हमारे घर में न रहने देगा।

एक दिन मल्लिका की आँखों में सच-सच आंसू भर आये थे। यह बात मानी ने ही बाद को मुझे बतलाई थी।

मल्लिका ने कहा—अच्छा अपने बाप को तू जबर्दस्ती ले जायगी तो मैं इतने बड़े घर में अकेली किस तरह रहूंगी, तू ही बता?

मानी ने कहा—बापू बूढ़े हो गये हैं—अब कब तक मेहनत करेंगे—तुम्हीं बताओ?

मल्लिका ने कहा—मैं शायद तेरे बापू से बहुत काम कराती हूं?

मानी सब जानती है। वह लज्जित होती है। कहती है—नहीं काकी, यह कौन कहता है? असल बात यह है कि बापू के यहां रहने से बिरादरी के लोग तरह-तरह की बातें कहते हैं। बिरादरी में हमारा सिर नीचा हो जाता है। इसी से तुम्हारे जमाई (अर्थात् मानी के पति) ने कहा है कि बिरादरी के सब लोगों को छोड़कर हम तीन आदमियों का अलग रहना तो नहीं हो सकता!

साथ में मानी का पति अमूल्यचन्द्र भी था। उसका सुर इस तरह मुलायम नहीं। उसने कहा—आदमी हम कहां हैं? हम तो तुम बड़े लोगों की नजर में कुत्ते से बदतर हैं। हम को तुम घर में घुसने देते हो?

मुर्झाई हंसी हंसकर मल्लिका ने कहा—हम घुसने देते हैं कि नहीं, यह जरा मानी से पूछकर देख अमूल्य!

मानी बात सँभालने के भाव से चटपट कह उठी—तुम तो घर में आने देती हो, लेकिन और सब तो नहीं आने देते—यही बात वह कह रहे हैं काकीजी।

मल्लिका ने कहा—जमाना बदलता जा रहा है—जो नहीं घुसने देते वे भी अब परहेज न करेंगे।

अमूल्य आगबबूला हो उठा। बोला—दया? दया नहीं चाहिए। हम ऊंची जातिवालों से अलग रहेंगे। कम्पनी बहादुर (अर्थात् गवर्नमेंट) ने बन्दोबस्त कर दिया है, दालान-कोठा, नौकरी-चाकरी, सब बँट जायगा। खूब हुआ—

मल्लिका ने कहा—इस तरह बँटवारा होने से आपस का प्रेम-प्यार नहीं रहेगा, सिर्फ़ अन्तर ही बढ़ जायगा—बीच की खाई ही चौड़ी होती जायगी।

एक लम्बी सांस छोड़कर मल्लिका कहती गई—मैं मानती हूं कि इन बड़ी जातिवालों का बड़ा दोष है, तो भी इन्हीं के हज़ारों लाखों लड़कों—युवकों ने मनुष्य के अपमान को हृदय से समझा है। इसी घर का एक आदमी सब छोड़-छाड़कर आज भी मारा-मारा फिर रहा है—हां रे मानी, आजकल तू अपने काकाजी को बिल्कुल भूल गई है क्या?

मानी लज्जित होकर हट गई। अमूल्य तब चला अपने ससुर (यदु) के पास। वह चौपाल के सामने की घास एक खुर्पी लेकर साफ़ कर रहा था। वहाँ और एक बार ससुर-दामाद में कहा-सुनी हुई। बहुत देर बाद जब रसोई बन गई तब मल्लिका ने जाकर देखा, यदु घास के ऊपर सिर पर हाथ धरे बैठा है।

मल्लिका बोली—अब यह क्यों करते हो चौधरी दद्दू? हम ऊंची जाति हैं—उनसे घृणा जो करते हैं, इसीलिए अब कोई स्कूल में पढ़ने न आवेगा, तुम घास उखाड़कर रास्ता चाहे जितना साफ़ क्यों न कर रखो।

यदु ने कहा—वही तो बहूरानी, आज यह नई बात सुन रहा हूं कि तुम और हम एकदम ग़ैर हैं, कोई वास्ता या सम्पर्क नहीं है।

मल्लिका ने कहा—रहेगा कैसे! कम्पनी सरकार ने दोनों के बीच

में लकीर खींचकर अलग-अलग मार्का जो लगा दिया है। उसे इधर-उधर कौन कर सकता है?

उस दिन मल्लिका ने मुझे एक चिट्ठी लिखी। जो कभी नहीं हुआ—वही उस चिट्ठी में मैंने पाया। चिट्ठी पढ़कर दो-सौ मील दूर से मैं उसका रोना जैसे सुन रहा था। चिट्ठी का हर एक अक्षर जैसे उसकी रुलाई का आंसू था। उसने लिखा था—हालत अच्छी नहीं है; कोई किसी का विश्वास नहीं करता। स्वदेशी-आन्दोलन के जमाने का हाल मैंने सुना है; लेकिन ऐसा दुर्दिन कभी नहीं आया। उस पर इस साल सब खेत उजाड़ पड़े हैं, वर्षा न होने से भयानक अकाल मुंह बाये खड़ा है। लोगों को अबकी खाने को नसीब न होगा।

अन्त को एक तरह जबर्दस्ती ही अमूल्य वगैरह यदु को नमः शूद्रों के मुहल्ले में ले गये। मल्लिका अकेली ही रहती है। किसी-किसी दिन यदु सन्ध्या होने पर छिपकर आता है, बहुत देर तक ठहरने की हिम्मत नहीं होती, घर की खबर लेकर खिसक जाता है।

लगभग छः महीने बाद यदु फिर घर में आकर जम गया। बोला—बड़े मेरे कुटुम्ब बने हैं। रोटी देने को कोई नहीं, घूसा मारने के मालिक हैं। समझीं बहूरानी, आज दोपहर को कोरा उपवास हुआ।

मल्लिका सिहर उठी—क्यों, क्या हुआ?

तीखी आवाज में यदु ने कहा—कहां से खाने को आवे? तेरह बीघे का खेत यों ही पड़ा हुआ है। उसके लिए कोई चेष्टा नहीं, कुछ करता-धरता नहीं। काम कौन करे? नवाब का बेटा (अमूल्य) टेढ़ी मांग निकालकर लम्बी-चौड़ी बातें करता घूमेगा; सन्ध्या के बाद जाकर अश्विनीनाथ के गांजे के अड्डे में जम जायगा—दम मारेगा। (आवाज धीमी करके) सुनता हूं, रात को इधर-उधर जाता है! पैसे की जरूरत

हैं—नशे की लत है। पैसा कहां से आवे? अन्त को चोरी-चमारी करके कहीं जेल-एल न जाय तो मानी के कष्ट की हद न रहेगी।

मल्लिका ने कहा—यही जैसे मैं कष्ट पा रही हूं?

यदु ने उच्छ्वसित होकर कहा—हूँः, तुम्हारी तरह! तुम तो भाग्य-वान् हो बहूरानी, इस हरामजादे की बात में तुम मेरे भैया को खींच लाईं? कहां वह और कहां यह?

भोजन की थाली सामने आते ही यदु कौर पर कौर खाने लगा। ऐसा नहीं जान पड़ता कि केवल दोपहर का ही वह भूखा है, शायद और भी कई वक़्त—कई दिन उसके भूखे ही कटे हैं। कब का भूखा था, कौन जाने!

मल्लिका का मन ख़राब हो रहा। रात को उसे ज़ोर से बुख़ार आ गया। बुख़ार इस तरह अक्सर आ जाया करता है। चिन्ता के मारे रात को नींद नहीं आई। उस दिन रात को दिया जलाकर तब मुझे चिट्ठी लिखी—अब वह अकेले संभाल नहीं पा रही है। लिखा—कब आओगे? मुझ से अब और रहा नहीं जाता—तुम चले आओ—इत्यादि।

उसी समय नया भारत-शासन-आईन पास हुआ। लोगों का कहना था कि हमने स्वाधीनता की राह में एक बड़ी-सी छलांग मारी है। बड़े घरों के ऐश-आराम में रहनेवाले बड़े लोग देह झाड़कर उठ खड़े हुए। अख़बारों में कालम के कालम उनके त्याग के विवरण छपने लगे। हर्षातिरेक से लोगों के शरीर में रोमांच हो आया—लोग पुलकित होकर धन्य-धन्य कहने लगे।

इस तरह के दर्जनों देश के नेता जब मौजूद हैं—जिनकी नेतागिरी में किसी को कोई सन्देह नहीं—तब फिर हम लोगों को क्या चिन्ता है? उनको कौंसिल की गद्दी पर बिठाने के मतलब से उनके लिए वोट इकट्ठा

करने में जेल से लौटे हुए हम-जैसे निकम्मों के दल कमर बांधकर जुट गये।

इसी उपलक्ष्य में हम कुछ नज़रबन्द भी एकाएक छोड़ दिये गये। हम लोगों को बस इतना-सा लाभ हुआ। पहले ही जो ट्रेन मिली, उस पर सवार हो गया।

सन्ध्या के बाद बड़े ज़ोर का जाड़ा पड़ने लगा; हवा तीर की तरह लग रही है। रास्ते में कुत्ते तक इसी बीच में खजूर के रस को जलाकर गुड़ बनाने की गरम भट्ठियों के किनारे गुंडली मारे पड़े हैं। इसी समय स्टेशन में गाड़ी पहुंची। देहात का छोटा स्टेशन। रोशनी कम। उतर कर मैं इधर-उधर ताकने लगा।

एक आदमी ने पूछा—कहां जाइएगा बाबू?

मैंने अपने गांव का नाम बताया। मैंने अपना बिछौने का बंडल और सूटकेस दिखाकर कहा—ले चलोगे? ज़्यादा बोझ नहीं है।

उसने अक्खड़पन से कहा—उंहूं, भारी क्यों होगा? रुई का बंडल है—चार आने लगेंगे—सोलह पैसे, धेला कम नहीं।

टिकट बाबू लालटेन हाथ में लिये उसी तरफ़ जा रहे थे—वह खड़े हो गये। बोले—नया आदमी देखकर ठग साले लूटने का डौल लगाते हैं। (उस आदमी से) मैं पूछता हूं, कभी सोलह पैसे इकट्ठे भी देखे हैं तूने?—(मुझ से) आप घबराइए नहीं, आगे बढ़कर देखिए, कितने आदमी मुंह बाए खड़े हैं। चार पैसे, बहुत हुआ तो छः पैसे में पहुंचा देंगे।

उस आदमी ने कहा—पक्के दो कोस का रास्ता है, नहर मंझाकर जाना होगा—सिर्फ़ छः पैसे?

टिकट बाबू—इतने ही में सभी तो जाते हैं।

वह आदमी—तो मैं भी जाऊंगा।

बोझ सिर पर लादकर वह तेज चाल से चल दिया।

पक्का रास्ता छोड़कर हम लोग पगडंडी की राह में उतरे। खूब चांदनी खिली हुई थी। मैदान, पेड़-पौधे, घना जंगल वग़ैरह बहुत दिनों के बाद देखकर बड़े अच्छे, बड़े सुन्दर लग रहे।

मैंने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है भाई?

उसने कहा—वह भी इन्हीं छः पैसों में पूछ लेंगे?

चुप होकर चलने लगा। मन में सोचने लगा—रोगी के-से चेहरे का आदमी है, दो-दो बोझ उठाकर खूब कष्ट पा रहा है, इसी से इसका मिजाज बिगड़ गया है। सहानुभूति के स्वर में मैंने कहा—अजी ए, यह सूटकेस बल्कि लाओ, मुझे दे दो।

खीझे हुए मुख से वह बोला—तो पैसे भी तो तीन कम कर दोगे?

राह छोड़कर अबकी वह आम के एक बाग़ में घुस पड़ा।

मैंने कहा—उधर क्यों रे?

उसने कहा—यहीं खड़े रहो बाबू, ज़रा पानी पी आऊं।

मैंने कहा—इतने जाड़े में पानी?

वह बिगड़ खड़ा हुआ। बोला—पानी भी न पीने दोगे? बाग़ के उस तरफ़ नहर है, कितनी देर लगेगी।

याद आगया, उधर कुछ नहर जैसा जरूर है। चैत के महीने में वह नहर एकदम सूख जाती है, बरसात में पानी आ जाता है, उसमें पानी के बदले क़लमी साग के पौधे और सेवार ही अधिक रहता है। बचपन में इस जगह दो-चार बार पूंटी मछली पकड़ने आ चुका हूं।

मैं खड़ा हो गया। फिर सोचा, खड़े होकर क्या होगा! इस आदमी के रंगढंग अच्छे नहीं देख पड़ते। बाग़ के भीतर जाकर थोड़ी-सी ऊंची जमीन है। वहां से अच्छी तरह देखने को मिला। चिल्लाकर पुकारा—

पानी पियेगा तो नहर के भीतर क्यों जा रहा है!

वह बोला—जी, किनारे का पानी गन्दला है।

मैंने कहा—कमर भर पानी में पहुंच गया है—अब भी आगे बढ़ रहा है?

जवाब न देकर वह आदमी तेज़ी के साथ सिवार तोड़कर रास्ता करने लगा। मैं वन-जंगल मंझाकर सीधा नहर के किनारे की ओर दौड़ा। तब तक उसने उस पार उठकर दौड़ लगाई।

यह देखकर मैं हंस उठा। मैंने कहा—भाग न पावेगा भैया। सात साल एक जगह अटका रहा, इससे यह न सोचना कि मेरे हाथ-पैर बेकार हो गये हैं। अच्छा, जितने ज़ोर से भागा जाय, भाग। मैं भी दौड़ता हूं।

मुझे सिवार तोड़ने की ज़रूरत नहीं पड़ी, इसलिए पलक मारते ही नहर पार होकर लगभग दो-सौ क़दम पर जाकर मैंने उसे पीछे से पकड़ लिया।

उसने सूटकेस फेंककर अपनी कमर से एक चाक़ू निकाल लिया। थोड़ी सी हाथापाई हुई। मैंने हंसकर कहा—इस चाकू से मछली काटी जाती है, आदमी नहीं काटा जा सकता—समझा?

हाथ मरोड़ते ही उसके हाथ से चाक़ू गिर पड़ा—वह आर्तनाद कर उठा।

गांव के किनारे हम आ पहुंचे थे। उसके चिल्लाने से लोग जमा हो गये।

सब कहने लगे—क्या हुआ? क्या हुआ?

उस आदमी ने बिना किसी हिचक के कह दिया—मार डाला भाइयो रे! हाथ मरोड़कर तोड़ डाला है। प्यास में पानी नहीं पीने देता। मैंने जैसे कहा कि गोपाल दादा के घर से ज़रा पानी पी लूं—

मालूम हो गया कि उस आदमी का घर इसी गांव में है। युवकों में से दो-एक छोकरे छाती फुलाकर आगे बढ़ आये। बोले—यह बात है! भद्दर (भद्र) लोग है कि नहीं—हम लोगों को ये जानवर समझते हैं। तूने पड़े-पड़े मार खा ली और उसका जवाब देना क्या हम लोगों के लिए छोड़ रखा?

बेशक मामला बेढब होता। लेकिन इसी बीच में एक अधेड़ आदमी मुझे जाना-पहचाना-सा लगा। चैतन मुखिया था वह। मैं पहले नहीं समझ पाया था कि कुशखाली गांव में मैं आ गया हूं।

चैतन मुखिया ने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर ताका। दाढ़ी-मूछ बढ़ी होने के कारण वह मुझे पहचानकर भी नहीं पहचान पाया।

मैंने कहा—मैं राय बाबू का लड़का मुन्नू हूं।

वह उस आदमी की ओर देखकर हंसकर बोला—मारा तो मारा अच्छा किया। इनके मारने से कोई हर्ज नहीं। यह नाते में तेरे चचिया ससुर होते हैं।

चैतन ने उस आदमी का परिचय दिया—यह तुम्हारे यदु चौधरी का दामाद है।—ओरे अमूल्य, परनाम कर।

अमूल्य मुंह फुलाये खड़ा रहा। इतने में वहां जमींदार की कचहरी के नायब आ पड़े। साथ में चार सिपाही थे। वह भी इसी गाड़ी से उतरे थे। रास्ते में सीधे जा रहे थे—हल्ला-गुल्ला सुनकर मामला क्या है, जानने के लिए आये थे।

वह बोले—क्यों जी, एकदम सब थम गया। यह लो, देखता हूं, अमूल्यचन्दर भी मौजूद हैं।

जो छोकरे विशेष बहादुरी दिखा रहे थे, उनका कहीं पता न था, किधर खिसक गये—जैसे कपूर की तरह उड़ गये। सामने नायब साहब

को देखकर अमूल्य ने गर्दन झुका ली।

मेरी ओर देखकर नायब ने कहा—कुर्ता तो खून से भीग गया है। खोलिए देखूं—ए: महाशय—यह तो गहरा घाव देख पड़ता है!

बात यह थी कि हाथापाई के समय अमूल्य के चाक़ू से मेरी पीठ लम्बान में चिर गई थी। उधर अब तक किसी की नज़र न पड़ी थी। एक बरकन्दाज ने जमीन से वह चाक़ू उठा लिया।

नायब बमगोले की तरह फट पड़े। ब्राह्मण का खून गिराया है पाजी, घर गिरवाकर गधे का हल चलवा दूंगा। तुझे ठीक करने का बन्दोबस्त तो अच्छी तरह हो गया। कल ही जाकर फ़ौजदारी का मुक़दमा दायर करूंगा। काले-पानी न भिजवा दूं तो मेरा नाम मन्मथ शिकदार नहीं—हां!

मेरा हाथ पकड़कर खींचते हुए बोले—चलिए महाशय। मैं हूं, कोई साला बच नहीं सकता। सारा ज़िम्मा मेरा रहा। चैतन मुखिया, बाबू का सामान तुम्हारे ज़िम्मे रहा, पहुंचा देना। कचहरी चलकर पहले डाक्टर को बुलाकर मरहमपट्टी कराई जाय।

रास्ते में आकर मन्मथ बाबू अपने मन के उल्लास को दबा न पाये। बोले—यह कुछ नहीं, जरा-सी ऊपर की खाल छिल गई है महाशय। डाक्टर की कोई ज़रूरत नहीं। लेकिन हां, गवाही के लिए एक डाक्टर ज़रूर चाहिए। डबल फीस थमा देने से ही यह काम हो जायगा—इसका बंदोबस्त हो जायगा।

चुपचाप कई पग आगे जाकर फिर शुरू किया—यह साला अमूल्य बिरादरी के छोकरों का अगुआ बना है। अरे तू अगुअई करेगा सो कर—अच्छी बात है। अगर संभालकर चले तो इसमें कुछ रुपए कमा भी सकता है। लेकिन अगुआई के लिए पहले कुछ घर से भी निकालना

पड़ता है। सब रोज़गारों की यही रीति है। तेरे तो घर में चूहे डंड पेलते हैं। कुलीगीरी करेगा और चौधराई भी करेगा--सिर्फ़ बाँभन-कायथों को गालियां देते फिरने से कैसे बचेगा? इसका फल भोगना ही पड़ेगा।

मैंने पूछा—इधर शायद यह आंदोलन खूब ज़ोर से चल रहा है?

नायब ने कहा--चलेगा नहीं? लगान वग़ैरह न देने की बात बहुत अच्छी लगती है न? सब सियारों की एक ही आवाज़ है।

मैंने कहा—ब्राह्मण-कायथ का झगड़ा यह कुछ नहीं है नायब साहब। उनको क्रोध आता है लगान की बढ़ोतरी और जोर-जुल्म के ऊपर। वही अब जाति का झगड़ा बन रहा है।

नायब इसका प्रतिवाद कर उठे। आप इसी धोखे में रहिए महाशय। ज़रा एक बार इधर-उधर छिपकर सुन आइए, तब सब मालूम हो जायगा।

मैंने कहा--इतना सब तो वे लोग सोचकर देख नहीं पाते!

नायब ने कहा--सोच सकें या न सकें--समझें या न समझें, लेकिन आग में डालने से हाथ जलेगा ही। हम क्या दब जायंगे? और यह भी कहता हूं कि धर्म अभी कहीं गया नहीं। नहीं तो देखिए न, दीवानी में एक महीने से दौड़-धूप करके भी सम्मन जारी नहीं करा पा रहा हूं, आज अचानक कहां से राह चलते आदमी आप यहां आ गये और यह काण्ड खड़ा हो गया। यह है फ़ौजदारी का मुकदमा, एकदम कच्चा खा जानेवाला देवता है यह। इससे अब कैसे बचेंगे बच्चू! सबेरे चट से थाने पर एक रिपोर्ट लिखाकर दूसरी ट्रेन से सीधे सदर पहुंचकर वकील की मार्फ़त मुक़दमा दायर! क्यों महाशय, है न ठीक? अब इतनी रात को घर क्या करने जाइएगा? हमारी कचहरी में दो कौर साग-भात खाकर सवेरे बल्कि इसी राह से चल दीजिएगा। मुक़दमे की तदबीर सब मैं कर लूंगा।

मैं सीधा ही चल दिया। नायब ने व्यस्त होकर पुकारा--तो सवेरे आइएगा न? या मुझे आदमी भेजना होगा?

मैंने कहा--मैं मुक़दमा नहीं चलाऊंगा।

नायब ने कहा--इसके माने?

घूमकर मैं खड़ा हो गया। कहा--मैंने सोचकर देखा नायब महाशय, दोष मेरा ही है। बेचारे के पेट में दाना नहीं, जाड़े की रात में बोझा लेकर चार मील आया था--मजूरी छः पैसे। इससे अगर आदमी का मिजाज बिगड़ जाय तो उसे दोषी नहीं ठहराया जा सकता। मैं अगर कहता कि चार आने ही मिलेंगे भैया तो वही न्याय होता। उस पर भी अगर यह सब होता तो--

नायब ने बात पूरी नहीं करने दी। गरज उठे--समझ गया। आप लोग सब "घर की ढेंकी मगर हो उठे हैं*" इसी से यह सब झगड़ा है।

मैंने कहा--झगड़ा-हंगामा न हो तो आप लोगों को दो पैसे की आमदनी कहां से हो? हाथ-बक्स बगल में दाबे खाते में केवल "लक्ष्मीजी सदा सहाय" लिखने के लिए क्या आप लोग कचहरी में बैठे हैं?

चांदनी के उजियाले में अपने घर के आगे बादाम के वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ। पुकारा--दरवाज़ा खोल यदु! ओ यदु!

इसी दरवाज़े के सहन में शाम को मैं कितना खेला हूं। उस समय मेरी मा जीवित थीं। ब्याह के बाद इसी बादाम के वृक्ष के नीचे

---

* यह एक बंगला की कहावत है। इसका मतलब है कि घर में धान कूटने की ढेंकी अगर मगर बनकर लीलने लगे तो कैसे कोई बच सकता है। तात्पर्य यह कि जब आप जैसे ऊंची जातिवाले ही छोटी जातिवालों की तरफ़दारी करने लगेंगे तब तो वे सिर चढ़ेंगे ही। — अनुवादक

मल्लिका की पालकी कहारों ने उतारी थी। आज मैं जैसे यहां नया अतिथि हूं---अजनबी हूं---कोई नहीं पहचानता। इतने दिन बाद लौट आकर जान पड़ता है, गांव के जाने-पहचाने आदमी बदल गये हैं---यह एक नई दुनिया है।

मैंने फिर पुकारा---यदु भाई, सुन नहीं पाते क्या? मैं हूं---मैं।

मल्लिका को बुखार चढ़ा था। लिहाफ़ के नीचे एक तरह से बेहोश पड़ी थी। पुकारना सुनकर हड़बड़ाकर उठ बैठी। द्वार खुलने पर घर के भीतर जाकर चौंक उठा। ठंड के डर से खिड़कियां-दरवाज़े सब बंद थे---टिमटिमाता चिराग जल रहा था। टूटी-फटी दीवार की संधि से झुंड के झुंड पतिंगे उड़ रहे थे। मल्लिका का चेहरा दुबला, पीला, डरावना हो गया था।

चांदनी से उज्ज्वल लंबी रात में चलकर जैसे मैं काले अंधकार गढ़े में आ पड़ा हूं।

मल्लिका की ओर मैंने अपना हाथ बढ़ा दिया। यह जीवन ने आकर क्या मृत्यु को प्यार करके पुकारा?

मैंने पूछा---कैसी हो मल्लिका?

मल्लिका ने कहा---अच्छी---बहुत अच्छी हूं। इधर कई दिन से बुखार है।

मैंने कहा---कई दिन से? कई बरस से कहो।

मल्लिका ने निर्लिप्त भाव से कहा---होगा। मलेरिया का बुखार है---इसी तरह रहता है।

मल्लिका ने उठने की चेष्टा की, मगर चक्कर आ जाने से बैठ गई। उसकी अभी अवस्था ही कितनी है, तो भी सिर के बाल पकने लगे हैं, सुकोमल मुख पर झुर्रियों की लकीरें खिंचने लगी हैं। वह लंबे-पतले

शरीरवाली हंसमुख औरत, जिसके चेहरे और आंखों में चंचलता नज़र आती थी, अब कितना धीरे बोलती है, चल-फिर नहीं पाती--कष्ट होता है।

बोली--चौधरी अकेले क्या-क्या करें! तुमने पहले से अपने आने की कोई ख़बर भी नहीं दी--अच्छे आदमी हो?

मैंने कहा-तुमने हृदय से पुकारा था न ददुदू, इसी से सरकार ने छोड़ दिया। तुम्हारी चिट्ठी पाते ही ऐसा हुआ मल्लिका कि ख़बर देने की देर बरदाश्त नहीं हुई--तुरन्त दौड़ा आया।

मल्लिका ने कहा--इतनी दया! ऐसी दुश्मनी भला और कौन करता, बताओ!

कहकर मल्लिका प्रगल्भ हंसी हंसने लगी।

यदु दिखाई दिया। चिउड़े के लड्डू और दूध लाया है। वह ठिठककर खड़ा हो गया। बोला--यह ख़ून का दाग़ कैसा है?

मल्लिका ने अब तक देख न पाया था। बोली--इधर घूमो तो--देखूं।

मैंने हंसकर उड़ा देना चाहा। कहा--उसमें देखने का क्या है? कांटे से छिल गया है। पसीने से कुर्ता चिपक जाने के कारण ऐसा दिखता है।

यदु ने कहा--ओह, तब तो ज़रा-सा आयोडीन--

मैंने कहा--उंहूं, सबसे पहले यह--

कहकर यदु के हाथ से एक तरह से छीनकर ही लड्डू खाने लगा। उसके बाद जान-बूझकर दूसरा प्रसंग छेड़ दिया।

मैंने पूछा--अच्छा मल्लिका, जब मैंने पुकारा था, तब तुमने आवाज़ सुनकर क्या सोचा था?

मल्लिका ने कहा--अभ्यास छूट गया है, इसलिए पहले ठीक समझ नहीं पाई। डर लगा, शायद कोई चोर-श्रोर है!

मैंने कहा--चोर शायद पुकारकर जगाता भी है! देखता हूं, तुम्हारे बुद्धि है!

कहकर मैं हंस उठा। उसके बाद कहा--चोर न सही, दागी तो हूं ही! घर तो आया हूं, लेकिन देखें, कब तक रहना होता है--

मल्लिका गंभीर हो गई। बोली--अगर मैं कहूं कि अब न जाने दूंगी--घर से निकलने न दूंगी?

मैंने कहा--ऐसा तो तुमने कभी किसी दिन नहीं कहा।

मल्लिका ने कहा--तब बालिका थी, एक बात भी क्या ठीक तौर से समझाकर कह पाती थी।--सचमुच मैंने यह तय कर लिया है कि तुमको अब बाहर-बाहर न रहने दिया जायगा।

मैंने कहा--तो फिर घर में ही रहूंगा।

हां, ठीक है। आज मन में नई भावना है। अब हमारा घर में रहना ही कर्तव्य है। गाँव के कार्तिक लुहार, अफ़ीन घरामी, बुद्धू शेख, हमारा यह अमूल्य, चैतन मुखिया--कोई बाद न जायगा--इन्हीं सबको लेकर तो हम लोगों का घर है।

खाना समाप्त हुआ। हाथ धोकर हंसते-हंसते पलंग पर आकर बैठा।

मल्लिका को मेरी बात पर ठीक विश्वास नहीं हुआ। बोली--सच कहते हो; गांव में रहोगे? तो फिर तुम्हारा देश का काम?

मैंने कहा--किन्तु यह गांव भी क्या देश नहीं है? ये सब, तुम--कौन देश का आदमी नहीं है, बताओ?

मल्लिका ने इस बात को सहज भाव ही में लिया! बोली--सो तो सच है। मान लो, तुमने तो अपनी सारी जिंदगी एक तरह से इसी राह

में लगा दी। और भी आदमी हैं, वे भी न जायं।

मैंने कहा—ठीक कहती हो। पर वे जाते जो नहीं!

मल्लिका ने कहा—शायद वे सोचते हैं कि इस काम में आत्मबलि देना—देश के लिए सर्वस्व त्याग देना बेकार है। यह जाति क्या कुछ कर सकती है। कुछ दिन रहो यहां, देखोगे हाल। देश के लड़की-लड़कों ने इतने दिन इतना दुःख-कष्ट स्वीकार करके कितना कुछ करना चाहा था, सब पर पानी फिर गया।

मल्लिका का गला भर आया। उसने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। मैं भी सहसा कुछ जवाब न दे सका। अन्त को मैंने कहा—राहमें बाधा-विघ्न तो आवेंगे ही मल्लिका। बाधा कठिन हो रही है, इसी से तो जान पड़ता है कि स्वाधीनता-सूर्य अब उदय होने ही वाला है। योगी-ऋषि लोग शव-साधना करते हैं, तब पिछली रात को ही डाकिनियों का उत्पात अधिक होता है। तुमने सुना नहीं?

मल्लिका की ओर व्यथा-भरी दृष्टि से मैं ताक रहा था। फिर मैंने कहा—मल्लिका, तुम्हारी रोगी देह है और मैं भी बूढ़ा होता जा रहा हूँ। संसार के किनारे आ पहुंचे हैं—श्मशान के ऊपर अब की घर नहीं खड़ा कर सके (अर्थात् अपने उजड़े पराधीन देश को सुखी-स्वाधीन नहीं बना सके) तो क्या हुआ? लेकिन इस उजड़े बाग़ में फूल अवश्य खिलेंगे। हम लोगों का इतना कष्ट कभी बेकार न जायगा।

सवेरा होते-न-होते दर्वाजे पर जोर-जोर से धक्के पड़ने लगे। यदु ने दर्वाजा खोलकर देखा—मानी, अमूल्य, चैतन मुखिया और-और भी दो-तीन आदमी आये हैं। ये ही उसे मारने को धमकाते फिरते हैं—कुशखाली गांव की ओर उसका जाना दूभर है। जमाई के साथ-साथ अपनी लड़की भी ग़ैर हो गई है।

किन्तु आश्चर्य भी बात है—उसी दामाद ने सबके आगे बड़े भक्ति भाव से झुककर यदु के पैरों पर सिर रख कर प्रणाम किया। पैर छोड़ना ही नहीं चाहता था।

चैतन ने कहा—लाज के मारे आता ही न था। मैंने कहा—रायबाबू के लड़के से कुछ डर नहीं है। ख़तरा है नायब से। वह इस मामले में घुस पड़ा है। वह तो साक्षात् कलिजुग का अवतार है—सफ़ेद झूठ को रँगचुन कर सच्चा बना देता है। अबकी ऐसा मौक़ा पा गया है कि सिर्फ़ अमूल्य ही नहीं, सारे गांव को नाकों चने चबवा कर छोड़ेगा।

यदु ने घबराकर पूछा—अमूल्य ने क्या किया?

मानी रोकर बोली—काकाजी ने कुछ नहीं कहा?—समझे चैतन दादा, यह भी उसी शिकदार की चालाकी है। बापू के कानों तक बात जायगी तो उनका लिहाज करना पड़ेगा—उनकी बात टाली न जा सकेगी, यही सोच कर एकदम दबा गये।—काका चले गये क्या?

यदु ने कहा—चिल्ला नहीं। वे लोग इसी कमरे में सो रहे हैं। बहू रानी को रात को नींद नहीं आती। जान पड़ता है, अब ज़रा आंख लगी है।

लेकिन मैं और मल्लिका, कोई सो नहीं रहा था। सब सुन रहे थे।

चैतन ने सांस छोड़ कर कहा—तो खैरियत है। उनके रवाना होने के पहले ही हम लोग आ गये। और तुझसे भी कहता हूं अमूल्य, मैंने बार-बार तुझे मना किया कि मेहनत-मजूरी कर, अधर्म के काम छोड़ दे—खासकर नायब जब हाथ धोकर तेरे पीछे पड़ा है—

बातों-बातों में यदु को सब हाल मालूम हो गया। इसी बीच मैं चुप-चाप उन लोगों के बीच में जाकर खड़ा हो गया। सहसा सब एक साथ चुप हो गये।

रुष्ट स्वरमें यदु ने कहा---ऐसे भूठे हुए हो भैया साहब, छूरी का खोंचा खाकर कह दिया, कांटे से छिल गया है!

मैंने कहा---कांटा नहीं तो क्या आदमी? कांटे से काँटा निकालने का बंदोबस्त हो रहा है। समझ-बूझकर चलो। लेकिन अन्त में दोनों को कूड़ाघर में जाना होगा।--

हो-हो करके मैं हँस उठा।

यदु और भी जल उठा। बोला---हंसो नहीं, मेरी देह में आग लगी हुई है। हरामज़ादा अंत को खूनी डाकू बन बैठा। नायब का जो जी चाहे, वह करे और तुम भी थाने चले जाओ भैया। काहे का जमाई? जमाई समझकर ख़ातिर न करो।

मैंने कहा---जमाई न सही, मेरे देश का आदमी तो है---ख़ातिर या ख़याल मुझे करना ही होगा।

कहते-कहते यदु को मैंने दोनों हाथों से उठा लिया। मन की ग्लानि को वह निकाल डाले।

मैंने कहा---बड़े भाई की तरह तूने मुझे पाला-पोसा और खेलाया है यदु-भाई---बाबूजी के पास तू ज़रा-सा था तब से रहा---तूने आज ऐसी बात कही? तेरी बहूरानी अँधेरे घर में अकेली हांफ रही है; और मेरी भी ज़िंदगी क़ैदख़ाने में कट गई---यह सब क्या अपने लिए? ब्राह्मण-कायस्थों के लिए, इन नमःशूद्रों और छोटे भाइयों के लिए नहीं? जिन को जानता-पहचानता नहीं, किसी दिन जिन्हें नहीं देख पाऊंगा---वे भी बड़े होंगे, इन्सान बनेंगे---यही क्या हमने अपना जीवन खपाकर नहीं चाहा? बोल यदु भाई, बोल---मैं झूठ तो नहीं कहता!

बूढ़ा यदु आज का नहीं है। उसने कहा---कहा क्या, जैसे हाहाकार कर उठा---इन सब बातों को आज कौन सोचता-विचारता है! एक वर्ग

दूसरे वर्ग को उसकाता-भड़काता ही नज़र आता है! लोगों में जैसे वह पुराना स्नेह और मेल-मिलाप रह ही नहीं गया। कहीं के किसी भटचाजी (भट्टाचार्य—व्यवस्था देनेवाला पंडित) ने सुनता हूं, नई बिवस्था (व्यवस्था) दी है कि तुम मेरे कोई नहीं हो—मैं तुम्हारा कोई नहीं हूं। आज अगर मालिक जीते होते!

पीछे से सुन पड़ा—हम तो हैं चौधरी-दद्द!

उधर ताक कर सब लोग कांप उठे। मल्लिका गिरती-पड़ती वहां उठ आई थी। पैर कांप रहे थे—आंखों में, जिनके चारों ओर स्याही के हल्के थे और जो गड्ढे में चली गई थीं, आग-सी निकल रही थी।

सामने की बेंच के एक छोर पर धप से वह बैठ गई।

कहने लगी—उस दफ़ा धरतीको बांटा था, अब की मनुष्यों को जुदा कर रहे हैं। तब हमने बर्दाश्त नहीं किया, अबकी भी नहीं सहेंगे। तुम लोग बैठो—मीठा मुंह करके जाने पाओगे। नीमू हलवाई की दुकान एक बार जा सकोगे चौधरी-दद्दू?

दम भर बाद मल्लिका फिर बाहर आई। उसके हाथ में अब की हल्दी से रंगा सूत था। बोली—मेरे ससुर ये राखियां उठाकर तब की रख गये थे। आओ, तुम लोगों को यह राखी बंधानी होगी। तुम आओ—तुम आओ—तुम—तुम—सब—

केवल अमूल्य मुंह फुलाये रहा। बोला—मेरा हाथ मरोड़कर एक-दम तोड़कर रख दिया है—इस हाथ में राखी पहनूंगा?

मैंने कहा—क्या करूं—हाथ के पास केवल हाथ ही मिल पाया! मन मिल जाता तो उस जहर से भरे मन को ही मरोड़कर तोड़ देता!

आज सचमुच चारों ओर मनुष्य के मन में विष फैलता जा रहा है। इस कालरात्रि के पहर गिन रहा हूं—सामने निर्मल प्रसन्न प्रभात है।

कोई चिन्ता नहीं, सब अन्धकार, सब ग्लानि, सब मोह दूर हो जायगा।

कुशखाली के किसानों के बीच आजकल मेरा खूब आना-जाना है। इसी बात को लेकर अनेक आदमी तरह-तरह की टिप्पणी करते हैं--

दारोगा कहता है--अबकी शायस्ता हो आये हैं मुन्नू बाबू। बाल सफ़ेद हो चले हैं न, और कितने दिन जीना है? सो अच्छा है, इस रास्ते में कोई झंझट--कोई खतरा नहीं है--

राजेश्वर नाम के गांव में एक ताल्लुकेदार हैं। रिश्ते में वह मेरे चाचा लगते हैं। एकाएक न जाने क्यों, उनकी मेरे ऊपर बड़ी नेक नज़र हो चली। एक दिन उन्होंने मुझे बुला भेजा। मुझसे बोले--कलकत्ते जाकर कुछ पैदा कर लो, तभी कहूंगा, तुम बेशक बहादुर हो भैया। साहब लोगों से कहा--एक अच्छी-सी नौकरी दीजिए सर, नहीं तो फिर जाकर दूने जोर से "स्वदेशी" में जुट जाऊंगा। इतनी उमर से यही देखता आ रहा हूं कि कितने ही लोगों ने ऐसा ही करके काफ़ी कमाकर रख लिया है। तुम्हीं क्यों छोड़ोगे?

और वह नायब महाशय--मन्मथ शिकदार कहते हैं कि हम लोग किसानों की बस्ती में घूम-घूमकर जमींदार के लगान का तगादा करते हैं--घाते में केला, मूली वग़ैरह उनसे वसूल कर लाते हैं। आप जो रोज़ वहां घूमने जाते हैं महाशय, सो क्यों? क्या आप लोगों की भारतमाता की स्वाधीनता भी इसी मोहल्ले से वसूल होगी?

मैंने कहा--हां भाई, असल जगह पा गया हूं। सच्ची स्वाधीनता ही लावेंगे गांव में, शहर में, सभी लोगों के लिए। वह होगी मिथ्या भय से स्वाधीनता, अन्याय अत्याचार के विरुद्ध सिर उठाकर खड़ा होने की स्वाधीनता, मनुष्य की तरह जीते रहने की स्वाधीनता। राजेश्वर ऐंड कम्पनी को असेम्बली में भेजकर अंगरेज़ों के खिलाफ़ लम्बी-चौड़ी कड़ी-

क ही वक्तृता कराने और उनके आत्मीय-कुटुम्बियों के लिए अच्छी-अच्छी कुछ नौकरियां हथियाने की स्वाधीनता नहीं।

सुनो, सुनो, मेरी उस स्वाधीन सुखी भावी धरती का स्वप्न। मनुष्य-मनुष्य का विरोध समाप्त हो गया है। शोषक और शोषित ने परस्पर हाथ मिला लिया है। हर आदमी के चेहरे पर हंसी है---चिरकाल का पंगु देश उठ बैठा है---वह देखो। लोगों के हृदय में आशा की बिजली चमक रही है।

पशु और मनुष्य पहले एक ही तरह के थे। प्रहार और पीड़न में सिर नहीं उठाते थे। पड़े-पड़े मार खाते थे—हाथ-पैर भी नहीं हिलाते थे। बहुत असह्य हुआ तो मुंह डालकर पड़ रहते थे। उन्हीं सब मनुष्यों में जीवन का जोश जग उठा है---सिर उठाकर उल्लास से वे इस उल्लास-मयी पृथ्वी की ओर ताक रहे हैं।

मल्लिका ने तर्क उठाया—यही मान लो हमारे यदु दद्दू हैं। रुपए-पैसे की कामना नहीं करते। गरीबी का जीवन ही उनके लेखे अच्छा है।

मैंने कहा---अच्छा तो वह बहुतों के लेखे है---दारिद्रय का गर्व लेकर वे चुपचाप मर सकते हैं।

मल्लिका ने कहा—लेकिन अमूल्य से मिलाकर उन्हें देखो—चौधरी-दद्दू के जीवन में कितनी शान्ति है!

मैंने कहा---यह जीवन नहीं, मृत्यु है। मृत्यु से अधिक शान्ति किसमें है?

मल्लिका ने कहा—-लेकिन सभी अगर सुखभोग और ऐश्वर्य की प्रत्याशा करेंगे तो दुनिया में क्या ईर्ष्या-द्वेष और छीनाझपटी और न बढ़ जायगी?

मैंने कहा---नहीं मल्लिका, यह न होगा। यह पृथ्वी कृपण नहीं है.

उसकी सम्पत्ति अपार अनन्त है। मनुष्य के प्रयोजन भर को अन्न उसके पास है; सबके रहने के लिए जगह भी है। नहीं है केवल मनुष्य के लोभ के लिए स्थान।

जैसे हवा के झोंकों में सुन पड़ता है—वह सुदिन आ रहा है—बहुत ही निकट है। सब समान हैं—प्रकाश, हवा, पृथ्वी के छाती के रस से सींची गई शस्य-सम्पत्ति, गुप्त कोठे में रखा हुआ इस्पात, कोयला और खनिज सम्पत्ति किसी एक की नहीं है। मारमार कर एक का हाथ पक्का हो गया है और दूसरे की भी पीठ मार खाये बिना खुजलाया करती है—इस अविचार का अन्त हो गया है। विरोध और अप्रीति दूर हो जायगी। शान्ति आवेगी, श्री फिर आवेगी। झगड़े के समय जोश में हमने भी कितने ही अन्याय किये हैं। रक्तपात हुआ है; अपने-पराये कितने ही लोगों के आंसू गिरे हैं? नवीन सुदिन में—सुप्रभात में किसी के मन में इन बातों की याद न रहेगी। प्रभात के उजाले में रात का दु:स्वप्न हम भूल जायंगे भाई!